MAHL 608

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

नाटक एवं कथेत्तर साहित्य (भाग दो)

चतुर्थ सेमेस्टर 608

नाट्य

विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी.शुक्ल
मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्तविश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो.सत्यकाम
हिन्दी विभाग
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो.आर.सी.शर्मा
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय,अलीगढ़

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ. शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ. शशांक शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

MAHL 608

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर,हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी	15, 16,17
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल	11, 12, 13
डॉ.विवेकानंद पाठक पं.पूर्णानंद तिवारी राजकीय महाविद्यालय ,दोषापानी	14,18

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2022

प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-72-4

MAHL 608

चतुर्थ सेमेस्टर 608

खण्ड 3 –हिन्दी निबन्ध : पाठ एवं आलोचना	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 11 करूणा: परिचय, पाठ एवं आलोचना	174-195
इकाई 12 पंडितों की पंचायत: परिचय, पाठ एवं आलोचना	196-213
इकाई 13 उत्तराखण्ड में संत मत और साहित्य: परिचय, पाठ एवं आलोचना	214-227
इकाई 14 अशोक के फूल : पाठ एवं मूल्यांकन	228-246
खण्ड 4–अन्य गद्य विधाएं : पाठ एवं आलोचना	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 15 आत्मकथा- अपनी खबर: परिचय, पाठ एवं आलोचना	247-263
इकाई 16 जीवनी- निराला: परिचय, पाठ एवं आलोचना	264-284
इकाई 17 संस्मरण- पथ के साथी: परिचय, पाठ एवं आलोचना	285-304
इकाई 18नैनीताल में :पाठ एवं मूल्यांकन	305-325

ईकाई 11 'करुणा' : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

11.3.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय

11.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यिक परिचय

11.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : विश्लेषण एवं आलोचना

11.5 निबंध का पाठ : करूणा

11.6 निबंध का सार : करूणा

11.7 करूणा : संदर्भ सहित व्याख्या

11.8 सारांक्ष

11.9 शब्दावली

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.12 सहायक पाठ्य सामग्री

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के रूप एवं उनकी अन्तरप्रकृति का अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप रामचन्द्र शुक्ल के सम्पूर्ण जीवन एवं उनके साहित्यिक अवदान से परिचित होंगे। इसके साथ ही साथ आप आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित महत्वपूर्ण निबंध 'करूणा' को पाठ, ससंदर्भ व्याख्या के साथ कर सकेंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप मानव मन के गत्भी भाव 'करूणा' का विश्लेषण कर सकेंगे तथा साथ ही हिन्दी साहित्य में आचार्य शुक्ल के महत्त्व का प्रतिपादन भी कर सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- मानवीय मनोविकारों में से एक 'करूणा' का महत्व ज्ञात कर उसे साहित्यिक कसौटी पर जॉच सकेंगे।
- एक सच्चे साहित्यिक मर्मज्ञ की तरह मानव मन की कारूणिक दशाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मानव जीवन के भीतर 'करूणा' के व्यवहारिक महत्व को समझ सकेंगे।

11.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

'' शुक्ल जी की व्यक्तिगत गंभीरता उनकी भाषा में व्याप्त रहती है। उनकी भाषा संयत, परिष्कृत, प्रौढ़ तथा विशुद्ध होती है; उसमें एक प्रकार का सौष्ठव विशेष है, जो संभवत: किसी भी वर्तमान लेखक में नहीं पाया जाता। उसमें गम्भीर विवेचना, गवेषणात्मक चिंतन एवं निर्मांत अनुभूति की पुष्ट व्यंजना सर्वदा वर्तमान रहती है। शुक्ल जी की शैली में वैयक्तिकता की छाप सर्वत्र ही प्राप्त होती है, चाहे वह निबंध रचना हो चाहे आलोचनात्मक विवेचन''

- जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

''भारतीय काव्यालोचन शास्त्र का इतना गंभीर और स्वतन्त्र विचारक हिंदी में तो दूसरा हुआ ही नहीं, अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी हुआ है या नहीं, ठीक नहीं कह सकते। शायद नहीं हुआ। अलंकारशास्त्र के प्रत्येक अंग पर उनहोंने सूक्ष्म विचार किया था- शब्द-शक्ति, गुण-दोष, अलंकार-विधान, रस आदि सभी विषयों पर उनका अपना सुचिंतित मत था। वे प्राचीन भारतीय अलंकारिकों को खूब जानते थे पर उनका अंधानुकरण करने वाले नहीं थे। रामचंद्र शुक्ल से सर्वत्र सहमत होना संभव नहीं। वे इतने गंभीर और कठोर थे कि उनके वक्तव्यों की सरसता उनकी बुद्धि की आंच से सूख जाती थी और उनके मतों का लचीलापन जाता रहता था। आपकों

या तो 'हाँ' कहना पड़ेगा या 'ना' बीच में खड़े होने का कोई उपाय नहीं।''

- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

11.3.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई. (संवत् 1940) को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में हुआ था। मूल रूप से इनके पूर्वज गोरखपुर क निवासी थे। उनके पितामह का नाम श्री शिवदत्त शुक्ल था। आचार्य शुक्ल के पिता श्री चन्द्रबली शुक्ल का जन्म 1862 ई. में हुआ था बाद में श्री शिवदत्त शुक्ल की मृत्यु के उपरांत आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पितामही आचार्य शुक्ल के पिता श्री चंद्रबली शुक्ल को लेकर गोरखपुर छोड़ बस्ती जिले के अगौना नामक गाँव में आ गई। आचार्य शुक्ल के पिता अध्ययनशील व्यक्ति थे। उनहें अंग्रेजी, फारसी और अरबी का अचछा जान था। सन् 1887 में आचार्य शुक्ल के पिता उत्तर प्रदेश के इटावाजिले में सुपरवाईजर कानूनगो के पद पर आ गए 1875 में ही चन्द्रबली शुक्ल का विवाह हो गया था। 1884 में अगौना में आचार्य रामचंद्रशुक्ल का जन्म हुआ। वे अपने पिता की चौथी संतान थे। 1891 में पिता के बतादले के पश्चात्आचार्य शुक्ल हमीरपुर जिले की 'राठ' तहसील में आ गए। यहीं आचार्य शुक्ल की प्रारम्भिक शिक्षा हुई। 1893 में आचार्य शुक्ल के पिता की नियुक्ति सदर कानूनगो के पद पर मिर्जापुर में हो गई। इस बीच आचार्य शुक्ल की माताका देहावसान गया। अपने पिता के साथ आचार्य शुक्ल के पिता मिर्जापुर आ गए। 1894 में आचार्य शुक्ल के पिता ने दूसरा विवाह कर लिया और विमाताके कारण आचार्य शुक्ल का जीवन कष्टप्रद हो गया। 1898 में 14 वर्ष की अवसथा में आचार्य शुक्ल ने अंग्रेजी तथा उर्दू विषय से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। स्कूलों में तब हिन्दी विषय की व्यवस्था नहीं होती थी लेकिन अपनी पितामही के संस्कारों के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल तुलसी, सूर एवं अनय भक्त कवियों की रचनाएँ बहुत मनोयोग से पढ़ते रहे। 1901 में शुक्ल जी ने स्कूल फाइनल परीक्षा भी उत्तीर्ण कर जी। 1898 में ही आचार्य शुक्ल का विवाह हो गया था तथा 1902 ई. में गृह कलह के कारण वे अपने पिता को छोड़कर पत्नी के साथा अगौना आ गए। यही शुक्ल जी के प्रथम पुत्र श्री केशवचंद्र शुक्ल का जन्म हुआ।इसके पश्चात् 1903 में इनकी प्रथम पुत्री दुर्गावती का जन्म हुआ। सन् 1905 मिर्जापुर के जिला कलेक्टर विढंम ने आचार्य शुक्ल की कला-प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें मिर्जापुर जिले का नायब तहसीलदार नियुक्त कर दिया, परन्तु आचार्य शुक्ल ने तत्कालीन स्वदेश प्रेम की भावना एवं स्वाभिमानी स्वाभाव के कारण यह पद स्वीकार नहीं किया। 1904 ई. में शुक्ल जी लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग टीचर के रूप में नियुक्त हुए।

अपने संस्कारों के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल बचपन से ही अध्ययनशील थे। अपनी इसी प्रवृप्ति के कारण शुक्ल जी की मित्रमण्डली जिसमें समवयस्क एवं प्रौढ़ दोनों के लोग थे- तैयार हो गई अपनी इस मित्र एवं शुभचिंतक मण्डली से आचार्य शुक्ल का व्यक्तित्व शनैः शनैः और अधिक गंभीर एवं अध्ययनशील होता गया इस मित्र मण्डली में बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पं.केदारनाथ पाठक, पं. रामगरीब चौबे, पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद तिवारी, बाबू बलभद्र

सिंह, बाबू काशी प्रसाद जायसवाल, पं. लक्ष्मीशंकर द्विवेदी जैसे प्रखर विचारक एवं विद्वान लोग शमिल थे। अपने गहन अध्यवसाय के चलते बहुत शीघ्र की आचार्य शुक्ल की मेघा कार्यशील हो गई। 1899ई. में ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार जोसेफ एडीसन के सुप्रसिद्ध निबंध **'प्लेजर्स ऑव इमैजिनेशन'** का अनुवाद 'कल्पना का आनंद' नाम से तथा कुछ ही समय बाद न्यूमैन के निबंध **'लिटरेचर'** का भावानुवाद 'साहित्य' शीर्षक से कर दिया था। अक्टूबर 1908 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'काशी नगरी प्रचारिणी सभा' की बृहद् योजना **'हिन्दी शब्द सागर'** के सहायक सम्पादक बनकर सपरिवार काशी आ गए। यहाँ आकर वे कोश सम्पादन के साथ-साथ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के कार्य भार भी संभालने लगे इस बीच उनका पारिवारिक-जीवन भी अपनी गति एवं प्रवृति से चलता रहा। 1912 तक आचार्य शुक्ल के परिवार में दो पुत्र एवं चार पुत्रियों का जन्म हो चुका था। 1918 ई. में आचार्य शुक्ल के पिता का देहान्त हो गया। सन् 1919 ई. में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की नियुक्ति काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में हो गई। आचार्य शुक्ल ने जीवन पर्यन्त विश्वविद्यालय की सेवा की। शुक्ल जी का व्यक्तिगत जीवन बहुत संघर्ष एवं कठिनाई में बीता। गंभीर अध्ययवसाय एवं प्रखर मेधा के कारण उन्होंने मृत्यु से पूर्व जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया (इकाई के अगले भाग में आप आचार्य शुक्ल के ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे) वे हिन्दी साहित्य की अपनी अमूल्य निधि है। परन्तु अपनी एकनिष्ठ साहित्य साधना और अपने स्वास्थ का ध्यान न रखने के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल को आरम्भ से ही कमजोर स्वास्थ का कष्ट उठाना पड़ा था। ''वे कई रोगों से पीड़ित थे। दमा का रोग प्रमुख था। अंतत: इसी रोग से 2 फरवरी, 1941 ई. को रात साढ़े नौ बजे 56 वर्ष 3 महीने 20 दिन की वय में उनकी इहलीला समाप्त हो गई। अनेक तरह की विपरीत परिस्थितियों एवं दबावों के बीच रहते हुए उन्होंने
हिन्दी की जो सेवा की वह श्लाध्य और अनुकरणीय है।"

11.3.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यिक परिचय

हिन्दी साहित्य के आलोचना पुरूष माने जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय निम्नलिखित है। विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि प्रस्तुत सूची से प्रेरित होकर वे आचार्य शुक्ल की रचनाओं को उनके ऐतिहासिक क्रम में अपने अध्ययन के क्षितिज को विस्तार देते हुए पढ़ेगें तथा आचार्य शुक्ल के बहाने हिन्दी- साहित्य के वैचारिक क्रम को समझने का प्रयास करेंगे।

(क) निबंध

1. भाव या मनोविकार - सर्वप्रथम फरवरी 1915 में प्रकाशित।
2. उत्साह - सर्वप्रथम – फरवरी 1915 में प्रकाशित
3. श्रृद्धा भक्ति - सर्वप्रथम दिसम्बर 1916 में प्रकाशित
4. करूणा - सर्वप्रथम दिसम्बर 1918 में प्रकाशित
5. लज्जा और ग्लानि -सर्वप्रथम दिसम्बर 1918 में प्रकाशित

6. लोभ और प्रीति -(पहले लोभ और प्रेम शीर्षक से) फरवरी- मार्च 1919 में प्रकाशित
7. घृणा - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित
8. ईर्ष्या - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित
9. भय और क्रोध - सर्वप्रथम जुलाई 1912 में प्रकाशित (ये सभी नौ निबंध नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुए थे)
10. काव्य में प्राकृतिक दृश्य - सर्वप्रथम सन् 1922 में 'माधुरी' पत्रिका में प्रकाशित।
11. गोस्वामी तुलसीदास और लोक धर्म – सर्वप्रथम सन् 1923 में माधुरी पत्रिका में प्रकाशित।
12. साधारणीकरण - सर्वप्रथम सन् 1933 में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ में प्रकाशित।
13. कविता क्या है -1909 ई. में प्रथम प्रारूप प्रकाशित।

(ख) पुस्तकें-

1. **विचार वीथी** - मनोविचार संबंधी सभी लेख, कविता क्या है? भारतेनदु हरिश्चन्द्र , तुलसी का भक्ति मार्ग निबंधों सहित सन् 1930 में प्रकाशित
2. **चिंतामणि, भाग 1** – (इंडियन प्रेस प्रयाग से सन् 1939 में प्रकाशित निबंध संग्रह) विचार वीथी(1930) पुस्तक के सभी निबंधों के अतिरिक्त 'साधरणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद ' मानस की धर्मभूमि', 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था , तथा 'रसात्मक बोध के विविध रूप' नामक नए निबंधों के साथ प्रकाशित।
3. **चिंतामणि – भाग 2** – 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' 'काव्य में रहस्यवाद' तथा काव्य में अभिव्यंजनावाद' इन तीन बड़े निबंधों का पुस्तक के रूप में सम्मिलित प्रकाशन सन् 1939 में 'काव्य में रहस्यवाद' सर्वप्रथम माधुरी पत्रिका 1922 में प्रकाशित हुआ तथा साहित्य भूषण कार्यालय, काशी द्वारा अलग से पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' सन् 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इन्दौर के अध्यक्ष पद से दिया गया अध्यक्षीय भाषण है।
4. **त्रिवेणी -** सूरदास, तुलसीदास तथा जायसी पर आचार्य शुक्ल द्वारा लिखित आलोचनात्मक प्रबंधों के विशिष्ट अंशों का संग्रह। सम्पादक श्री कृष्णानंद, 1935
5. **रस मीमांसा** - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादिक, प्रथम प्रकाशन सन् 1949
6. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** - (मूलत: हिन्दी शब्द सागर की भूमिका के रूप में लिखा गया) पुस्तक के रूप में 1929 ई. में प्रथम प्रकाशन- संशेधित 1940 ई.
7. **गोस्वामी तुलसीदास** - सर्वप्रथम 1924 ई. में प्रकाशित
8. **महाकवि सूरदास** - सर्वप्रथम 1924 ई. में प्रकाशित।

9. **बाबू राधाकृष्ण दास का जीवन चरित** – सन् 1913 में प्रकाशित।

(ग) सम्पादित ग्रंथ-

1. **तुलसी ग्रंथावली** (3 भाग) लाला भगवानदीन एवं ब्रजरत्न दास के साथ सम्पादित, सन् 1923
2. **जायसी ग्रंथावली**- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सन् 1924 में प्रकाशित
3. **भ्रमर-गीत सार** (सूरदास के 403 पदों के शुद्धपाठ, अर्थ, टिप्पणी भूमिका सहित, साहित्य सेवा सदन, वाराणसी द्वारा सन् 1925 में प्रकाशित।
4. **वीर सिंह देवचरित** - केशवदास प्रणीत ग्रंथ के 14 वें प्रकाशन का सम्पादन,नागरी प्रचारिणी, सभा द्वारा 1926 में प्रकाशित।
5. **भारतेंदु -संग्रह** – सन् 1928 में प्रकाशित।

(घ) अनुवादित ग्रंथ

1. **कल्पना का आनंद** (जोसेफ एडिसन् द्वारा लिखित निबंध 'प्लेजर आफ इमैजिनेशन) लिखित 1901 प्रकाशित 1905।
2. **साहित्य** (न्युमैन का 'लिटरेचर' नामक निबंध)
3. **'मेगस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण'** (डा. श्वान बक की पुस्तक 'मेगस्थनीज इंडिका) - 1906
4. **'राज्य प्रबंध शिक्षा'** (सर टी. माधव राव के 'माइनर हिंट्स' का अनुवाद) सर्वप्रथम 1913में प्रकाशित।
5. **आदर्श जीवन** (एडम्स विलियम डेवन पोर्ट की पुस्तक 'प्लेन लिविंग एण्ड हाई थिकिंग) पर लिखित निबंधों का संग्रह सन् 1914 में प्रकाशित।
6. **विश्व प्रपंच** (हैकल की पुस्तक 'रिड्ल ऑव द यूनिवर्स का अनुवा, लम्बी मौलिक भूमिका सहित सन् 1920 ई. में प्रकाशित।
7. **शशांक** (राखालदास बंद्योपाध्याय के बांग्ला उपन्यास का अनुवाद) 1922 ई.
8. **बुद्धचरित** (एडविन आर्नल्ड के 'लाईट ऑफ एशिया का हिन्दी अनुवाद, मौलिक भूमिका सहित) सन् 1922 में प्राकशित (ब्रजभाषा में पद्यानुवाद)
9. **'वाट हैज इंडिया टू डू'** मौलिक अंग्रेजी निबंध, 1907 में प्रकाशित, **'हिन्दी एण्ड द मुसलमांस**, मौलिक अंग्रजी निबंध, लीडर के कई अंकों में 1917 में प्रकाशित, **'नॉन कोऑपरेशन एंड द नॉन मर्केंटाइल क्लासेज** एक्सप्रेस, पटना के कई अंकों में 1921 प्रकाशित मौलिक अंग्रेजी निबंध।

(च) कविता

'मधुस्रोत ' (1901 से 1929 तक लिखित कविताओं का संग्रह सनद्व 1971 में प्रकाशित

(छ) निबंध संग्रह

1. चिंतामणि भाग 3, (सं0) नामवर सिंह - 1983

2. चिंतामणि भाग 4, (सं0) कुसुम चतुर्वेदी - 2002

11.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : विश्लेषण एवं आलोचना

'निबंध' शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ.जानसन ने लिखा है, ''निबंध मस्तिष्क की सहसा उठी हुई अनियंत्रित, विश्रंखलित , उन्मुक्त कल्पना शक्ति का परिणाम है'' यही कारण है कि निबंध के जन्मदाता मानटेन से लेकर वर्तमान तक ललित निबंधकार यह स्वीकार करते हैं कि निबंधों में मर्मस्पर्शिता व मौलिक व्यक्तित्व की छाप होनी चाहिए, सुप्रसिद्ध आलोचक हडसन ने तो 'व्यक्तिगत निबंध' को ही यथार्थ निबंध माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** (पृष्ठ-505) में निबंध साहित्य का विश्लेषण करते हुए लिखा है, ''आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व या व्यक्तिगत विशेषता हो। व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की श्रंखला रखी ही न जाए या जानबूझ कर जगह-जगह तोड़ दी जाए। एक ही बात को लेकर किसीका मन किसी संबंध-सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। वयक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है।'' उसी बात को सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. सत्येन्द्र ने स्पष्ट करते हुए लिखा '' निबंध के सम्बंध में यह बात आज निशिचत-सी मान ली गई है कि वह आत्माभिव्यक्ति का ही साधन है। अत: चाहे कोई विषय हो या विषय की कोई शाखा हो, उसमें व्यक्तिपरकता अवश्य होनी चाहिए।'' अपनी पुस्तक चिन्तामणि के आरम्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है, '' इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा के पड़ने वाले कुछ प्रदेश है। यात्रा के लिए निकलती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों में पहुँची है, वहाँ ह्रदय थोड़ा बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ-कुछ सहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता है। बुद्धि-पथ पर ह्रदय भी अपने लिए कुछ-न-कुछ पाता रहा है। इस बात का निर्णय विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूँ कि निबंध विषयप्रधान है कि व्यक्तिप्रधान।'' परन्तु आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध वास्तव में कहीं विषय प्रधान है तो कही व्यक्ति प्रधान। उनके निबंधों में ह्रदय तथा बुद्धि तत्व का सुमधुर समावेश है। तब ही तो रोचकता लाने के लिए कहीं-कहीं लोक प्रचलित कथाओं को गूंथा है तो कहीं अपने जीवन से घटनाओं, दृश्यों आदि का प्रसंग देकर विषय को स्पष्ट किया है। साथ ही शैली में अद्भुत वक्रता, तीक्ष्णता, कथन की विचित्रता अर्थशक्ति से नीरसता को तो दूर किया ही है, जरूरत पड़ने पर चोट करने से भी नहीं चूके हैं। उनके निबंधों में प्राप्त व्यंग्य-आक्षेप, हास-परिहास तथा वक्रता की त्रिवेणी में पाठक सहज भाव से अवगाहन करता चलता है। विचारों की गहराई के बीच व्यक्तिगत बातों और व्यंग्य विनोद से व्याख्या भी रूचिकर

हो गई है। निबंधों के माध्यम से आचार्य शुक्ल का सम्पूर्ण व्यक्तित्व पाठक के सामने आ जाता है।

हम देख सकते हैं कि निबंध साहित्य के माध्यम से आचार्य शुक्ल का लेखन मानदण्ड स्थापित करता है। शुक्ल जी के चिंतामणि में संकलित मनोविकार संबंधी निबंध अपनी वैचारिकी के कारण न केवल हिन्दी साहित्य अपितु अन्यान्य भारतीय साहित्य में भी स्मरणीय रहेंगे। विद्धानों ने आचार्य शुक्ल के चिंतामणि में संकलित निबंधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

(क) **भाव सबंधी निबंध-** 'करूणा', 'श्रृद्धा-भक्ति', 'उत्साह', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'ईर्ष्या', 'भय तथा क्रोध', 'घृणा', शीर्षक निबंध इसी कोटि में रखे जाऐंगे।

(ख) **आलोचनात्मक निबंध-** 'कविता क्या है', 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था', 'साधारणीकरण एंव व्यक्ति वैचित्र्यवाद ' तथा 'रसात्मक बोध के विविध' रूप इस श्रेणी के निबंध है। 'तुलसी का भक्ति-मार्ग', एवं 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' भी इसी कोटि के निबंध है।

(ग) **आलोचनात्मक प्रबंध-** 'काव्य में रहस्यवाद', 'काव्यमें अभिव्यंजनावाद इस कोटि के निबंध हैं।

यदि शुक्ल जी के निबंधों को शास्त्रीय वर्गीकरण से अलग हट कर देखा जाए तो भी उनक निबंध अपना मापदण्ड स्वयं स्थापित करते चलते हैं। और जैसा कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, ''उनकी विचार पद्धति बहुत कुछ सुनियोजित है। आरंभ में वे प्रतिपाद्य विषय को नपी-तुली शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं। कोशिश करते है कि विवेच्य विषय की सभी विशेषताओं को सूत्रबह करकेउसे परिभाषित कर दिया जाए। 'श्रृद्धा-भक्ति', 'उत्साह', 'लज्जा', 'प्रेम', 'घृणा', 'भय', 'ईर्ष्या' एवं 'करूणा' आदि मनोभावों को उन्होंने परिभाषित भी किया है। उसके बाद विषय को स्पष्ट करने के लिए वे उससे सबंद्ध विचार-सूत्रों को विस्तार देने या फैलाने के क्रम में वे मनोभाव-विशेष की वर्गगत पहचान, उसके समकक्ष रखे जा सकने वाले मनोभावों से उसकी समता-विषमता, उसकी प्रेष्यता-उप्रेष्यता, समाज पर उसके शुभ-अशुभ प्रभावों आदि की चर्चा करते हैं। अपने निबंधों के अन्त में वे प्राय: अपने पूरे प्रतिपाद्य को साफ-सुथरे ढंग से संक्षेप में प्रस्तुत कर देते हैं'' यह सर्वविदित है कि शुक्ल जी के निबंध विचारात्मक शैली समास-प्रधान है। विचारों के गूढ़ गुंफन इसी शैली में संभव है। भावात्मक शैली का प्रयोग उन्होंने प्राय: वहाँ किया है, जहाँ उनका मन विधाता द्वारा रचित उस विश्व-काव्य की रमणीयता देखकर मुग्ध हो गया है या जहाँ अपने काव्य नायक राम के शील का उत्कर्ष देखकर वे स्वयं अभिभूत हो गए हैं। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग शुक्ल जी ने बहुत कम किया है। विचारात्मक शैली शुक्ल जी की पहचान है। शुक्ल जी की शैली

कहीं-कहीं उतनी सघन हो जाती है कि वे सूत्र-वाक्यों की रचना करने लगते हैं। उनके कुछ प्रमुख सूत्र-वाक्य निम्न हैं।

1. भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है। (भाव या मनोविकार)
2. यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रृद्धा जागरण है। (श्रद्धा-भक्ति)
3. मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में है। (करूणा)
4. ज्ञान प्रसार के भीतर ही भाव प्रसार होता है। (कविता क्या है ?)

बोध प्रश्न-

(क)लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) डॉ. जॉनसन के अनुसार निबंध की परिभाषा दीजिए।

(2) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के भाव संबंधी निबंध कौन-कौन से है।

(ख) अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के किन्हीं दो निबंधों के नाम लिखिए।

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जन्म एवं मृत्यु कब हुई थी ?

(2) ‘हिन्दी साहित्य के इतिहास’ का प्रकाशन वर्ष लिखिए .

(3) आचार्य शुक्ल का प्रथम निबंध-संग्रह कौन सा था ?

(ख) सही विकल्प चुलिए

(I) इनमें से कौन सा निबंध आचार्य शुक्ल द्वारा अनुवादित निबंध है-

(क) मित्रता

(ख) विश्व प्रपंच

(ग) वॉट हैज इण्डिया टू डू

(घ) कल्पना का आनंद

11.5 निबंध का पाठ : करूणा

जब बच्चे को संबंध ज्ञान कुछ-कुछ होने लगता है तभी दु:ख के उस भेद की नींव पड़ जाती है जिसे करूणा कहते हैं। बच्चा पहले परखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना क्रम के स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्यकारण संबंध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दु:ख के कारण या कार्य को देखकर उनके दु:ख का अनुमान करता है और स्वयं एक प्रकार का दु:ख अनुभव करता है। प्राय: देखा जाता है कि जब माँ झूठमूठ ‘ऊं ऊं ’ करके रोने लगती है तब कोई-कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। इसी प्रकार जब उसके किसी भी भाई या बहिन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।

दु:ख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार के करूणा का उलटा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करूणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है, उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दु:ख और आन्नद दोनों की श्रेणियों में रखी गई है। आनंद की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है, जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दु:ख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनंद की श्रेणी में रखा है, चाहे कभी-कभी और व्यक्तियों या वस्तुओं की हानि पहुँच जाए पर जिसे जिस व्यक्ति या वस्तु का लोभ होगा, उसकी हानि वह कभी न करेगा। लोभी महमूद के सोमनाथ को तोड़ा, पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको खूब सॅभालकर रखा। नूरजहॉ के रूप में लोभी जहॉगीर ने शेर अफगन को मरवाया, पर नूरजहां को बड़े चैन से रखा।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता हे, उसके सुख और दु:ख का बहुत सा अंश दूसरे की क्रिया या अवस्था पर अवलंबित हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दु:ख से दु:खी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम जितना व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूॅ, नहीं। हम अज्ञात कुलशील मनुष्य के दु:ख को देखकर भी दु:खी होते हैं। किसी दु:खी मनुष्य को सामने देख हम अपना दु:खी होना तब तक के लिए बन्द नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाए कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है, यह और बात है कि यह जानकर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध या अत्याचार किया है, हमारी दया दूर या कम हो जाए। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध या अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी या अत्याचारी का वर्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है।

सारांश यह है कि करूणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दु:ख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद या संबंधी हो अथवा अत्यंत सज्जन, शीलवान् या चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनंद का उदय नहीं होता। इससे प्रकट है कि दूसरों के दु:ख से दु:खी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देखकर जो आनंद होता है उसका न तो कोई अलग नाम रखा गया है और न उनमें वेग या प्रेरणा होती है। पर दूसरों के दु:ख के परिज्ञान से जो दु:ख होता है, वह करूणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है। जबकि अज्ञात व्यक्ति के दु:ख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तो जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग होता है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित रहते हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है उसके उतने ही दु:ख पर हमें अवश्य अधिक करूणा होगी। किसी भोली

भाली सुंदरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई बंधु को दु:ख में देख, हमें अधिक व्याकुलता होगी। करूणा की तीव्रता का सापेक्ष विधान जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्य विभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए। मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता या दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके संबंध या संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होत है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म सज्जनता या दुर्जनता की कोटि में न आएगा। उसके सब कर्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अत: सबके उद्देश्य को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख का स्थापन और दु:ख का निराकरण हुआ। अत: जिन कर्मो से संसार के इस उद्देश्य के साधन हों वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी के लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्मो से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दु:ख की निवृत्ति हो वे शुभ और सात्विक हैं तथा जिस अंत:करणवृति से इन कर्मों में प्रवृत्ति हो वह सात्विक है। कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है, पर एक तो कृपा अनुग्रह में आत्मभाव छिपा रहता है और उनकी प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतिकार है। दूसरी बात यह है कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दु:ख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यंत अधिक हैं।

दूसरे के उपस्थित दु:ख से उत्पन्न दु:ख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोविकारों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के संभाव्य दु:ख का ध्यान या अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हें जिनसे अकारण दूसरे को दु:ख पहंचे, शील या साधारण सद्वृति के अंतर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता या मुरौवत ही का भाव समझा जाता है, जैसे- 'उनकी आँखों में शील नहीं है', 'शील तोड़ना अच्छा नहीं', दूसरों का दु:ख दूर करना और दूसरों को दु:ख न पहुँचना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है, पर ऐसा नहीं जिससे किसी का कोई काम बिगड़े या जी दुखे। यदि वह किसी अवसर पर बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसलिए कि वह उसे ठीक नहीं जॅचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है, इसलिए नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे। मेरे विचार में तो 'सदा सत्य बोलना', 'बड़ों का कहना मानना' ये नियम के अंतर्गत हैं, शील या सद् भाव के अंतर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाए। पर मनोरंजन, खुशामद और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी-किसी अवस्था में तो धर्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाजत तक दे दी गई है, विशेषत: जब इस नियम भंग द्वारा अंत:करण की किसी उच्च और उदार वृति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निस्सहाय व्यक्ति अनुचित दंड से बच जाए तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील या सद्वृति का साधक हैं, समकक्ष नहीं। मनोवेग वर्जित सदाचार दंभ या झूठी कवायद है। मनुष्य के अंत:करण में सात्विकता की ज्योति जगानेवाली

यही करूणा है। इसी से जैन और बौद्धधर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है-

पर उपकार सरिस न भलाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

यह बात स्थिर और निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी न किस रूप में सात्विक शील ही होता है। अत: करूणा और सात्विकता का संबंध इस बात से और भी सिद्ध होता है कि किसी पुरूष को दूसरे पर करूणा करते देख तीसरे को करूणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में और किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा, आनंद आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। क्रिया में तत्पर करने वाली प्राणियों की आदि अंत:करणवृति मन का मनोवेग है। अत: इन मनोवेगों में जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्विकता का आदि संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य के आचरण के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं, बुद्धि नहीं। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग-अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मन के वेग या प्रवृति पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुनकर कार्य में प्रवृत्त हो। यदि विचार कर देखा जाए तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अंत:करण की सारी वृत्तियॅा केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे भावों या मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूंढती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर भाव को और भावना को तीव्र करने वाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दु:ख होता है उसमें कभी-कभी दया या करूणा का भी कुछ अंश मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करूणा का विषय दूसरे का दु:ख है। अत: प्रिय के वियोग में इस विषय की भावना किस प्रकार होती है, यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है, वह उसके दूर होने से अनश्चिय में परिवर्तित हो जाता है। अत: प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करूणा का विषय प्रिय के सुख का निश्चय है। जो करूणा हमें साधारणजनों के वास्तविक दु:ख के परिज्ञान से होती है, वही करूणा हमें प्रियजनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारणजनों का तो हमें दु:ख असहा होता हैद्व पर प्रियजनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चय बात पर सुखी या दु:खी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है, इसी से इस प्रकार के दु:ख या करूणा को किसी-किसी प्रांतिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय से वियोगजनित दु:ख में जो करूणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्‍चय है। राम जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दु:खी होती है-

बन को निकरि गए दोउ भाई।
सावन गरजै, भादों बरसै, पवन चलै पुरवाई।
कौन बिरिछ तर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई। (गीतावली)

प्रेमी को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए जहॉ सब प्रकार का सुख वैभव था, पर यशोदा इसी सोच में मरती रहीं कि-

प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मांगे दैहै ?
को मेरे बालक कुंवर कान्ह को छिन-छिन आगे लैहै ?

और उद्धव से कहता है-

संदेसो देवकी सों कहियो।
हों तो धाय तिहारो सुत को, कृपा करत ही रहियो।।
उबटन, तेल और तातों जल, देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते।।
तुम तो टेब जानतिहि ह्वैहो, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावे।।
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वैहै करत सैंकोच।।

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं, कभी-कभी घोर अनिष्ट की आशंका तक होती है, जैसे एक पति वियोगिनी संदेह करती है-

नदी किनारे धुंआ उठत है, मैं जानूं कुछ होय।
जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय।।

शुद्ध वियोग का दु:ख केवल प्रिय के अलग हो जाने की भावना से उत्पन्न क्षोभ या विषाद है जिसमें प्रिय के दु:ख आदि की कोई भावना नहीं रहती।

जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार हाता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के संबंध द्वारा व्यक्त होता है। मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। अत: ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके संसार के एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंग का खंडित हो जाना है। किसी प्रिय या सुहृदय के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करूणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर प्राणी उसके साथा किए हुए अन्याय या कुव्यवहार तथा उसकी इच्छापूर्ति करने में अपनी त्रुटियों का स्मरण कर और यह सोचकर कि उसकी आत्मा को संतुष्ट करने की भावना सब दिन के लिए जाती रही, बहुत अधीर और विकल होते हैं। सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करूणा का प्रसार आवश्यक है। समाजशास्त्र के पश्चिमी ग्रंथकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की सहायता अपनी अपनी रक्षा के विचार से की जाती है; यदि ध्यान से देखा जाय तो कर्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देने वाली किसी न किसी रूप में करूणा ही दिखाई देगी। मेरा यह

कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है। मेरेकरने का अभिप्राय है कि संसार में एक दूसरे की सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्था परिणाम पर दृष्टि रखकर नहीं की जाती बल्कि मन का स्वत: प्रवृत्त करनेवाली प्रेरणा से की जाती है। दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की भी संभावना , इस बात या उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक,विशेषकर सच्चे सहायक को तो नहीं रहता। ऐसे विसतृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चंचल और मुंडे मुंडे भिन्न वसतुके भरोसे नहीं छोड़ती। किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज रक्षा के लिए एक दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी, यह समाजशास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही जानते होंगे। यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पंचायत ही के कारण होती और यदि उसका उद्देश्य वही तक होता जहाँ तक समाजशास्त्र के वक्ता बतलाते हैं , तो हमारी दया मोटे, मुस्टंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन,अशक्त और अपाहिज लोगों पर नहीं, जिनसे समाज को उतना लाभ नहीं ।पर इसका बिलकुल उलटा देखने में आता है। दु:खी व्यक्ति जितना ही असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करूणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करूणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं। इसस स्पष्ट है कि परस्पर सहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनको धारण करने वाला मनुष्य का छोटा सा अंत:करण नहीं, विश्वात्मा है। दूसरों के, विशेषतया अपने परिचितों के, थोड़े क्लेश या शोक पर जो वेग रहित दु:ख होता है, उसे सहानुभूति करते हैं। शिष्टाचार में उस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा सा हो गया है। अब प्राय: इस शब्द से हृदय का काई सच्चा भाव नहीं उपजता । सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म शिष्टता मनुष्य के व्यवहार क्षेत्र से सच्चाई के अंश को क्रमश: चरती जा रही हैं।

करूणा अपना बीज अपने आलंबन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात् जिस पर करूणा की जाती है वह बदले में करूणा करने वाले पर भी करूणा नहीं करता, जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है - बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है। बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करने वाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। कोमल भावों की योजना में दक्ष बँगला के उपन्यास लेखक करूणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं। मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यंत संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान या दूसरों से प्राप्त ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लांघता हुआ अपना देशकाल संबंधी विस्तार बढ़ाता है। प्रस्तुत विषय के संबंध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विसतार कभी कभी आवश्यक होता है। मनोविकारों की उपयुक्तता कभी कभी उस विस्तार पर निर्भर रहती है।किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई बार वह बड़े-बड़े अपराध कर चुका है, उससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा,

तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि भावों या मनोविकारों के केवल सहायक हैं अर्थात् प्रकारांतर से वे उनके लिए विषय उपस्थित करते हैं। वे कभी तो आप से विषयों को मन के सामने लाते हैं, कभी किसी विषय के सामने आने पर उससे संबंध (पूर्वापर व कार्यकारण संबंध) रखनेवाले और बहुत से विषय उपस्थित करते हैं। जो कभी तो सब के सब एक ही भाव के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न भाव को तव्र करते हैं; कभी भिन्न भिन्न भावों के विषय से उत्पन्न भावों को परिवर्तित या धीमा करते हैं। उससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग या भावों को मंद या दूर करनेवाली, स्मृति, अनुमान या बुद्धि आदि कोई दूसरी अंत:करणवृत्ति नहीं है, मन का दूसरा भाव या वेग ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में है। नीतिज्ञों और धार्मिकों का मनोविकारों को दूर करने का उपदेश घोर पाषंड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर सान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हे परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थो के साथ उनके उपयुक्त संबंध निर्वाह पर जोर देते हैं। यदि मनोवेग न हो तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों के मारने और अशक्त करने पर विवश होता जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनंदित होने के लिए अब उसे ह्रदय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध या घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की मुँह पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा के कारण उसे दूसरे के दु:ख की ओर ध्यान देने,उस पर दया करने और उसके दु:ख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य ह्रदय को दबाकर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है। उसकी भवुकताकानाश होता है। पाखंडी लोग मनोवेगोंका सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बनाकर कहने लगे हैं- ''करूणा छोडों, प्रेम छोड़ो, आनंद छोड़ो। बस हाथ पैर हिलाओं, काम करों।''

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार व्यवहार करना और बात; पर अनुसारी परिणाम के निरंतर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो चार बार उसे दया उत्पन्न होगी; पर जब बार-बार दया की प्रेरणा के अनुसार कोई परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे-धीरे उसकी दया का अभ्यास कम होने लगेगा यहाँ तक कि उसकी दया की वृत्ति ही मारी जाएगी। बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें करूणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा सकता। पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसार परिणामों का विरोध प्राय: तीन वस्तुओं से होता है-

1 आवश्यकता 2. नियम, और 3. न्याय।

हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढ़ा और कार्य करनेमें अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया जो आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे

अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करनेकी कौन कहे, उसका चिह् तक नहीं प्रकट होने देते। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रूपया देकर लोग कोई कार्य करने पाएँ तो जो व्यक्ति रूपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे दीन अकिंचन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा, दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चंद्र ने अपनी रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती तो राजा हरिचंद्र के उस नियम पालन का उतना महत्व न दिखाई पड़ता; करूणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती है। करूणा का विषय दूसरे का दु:ख है। अपना दु:ख नहीं। आत्मीय जनों का दु:ख एक प्रकार से अपना ही है। इससे राजा हरिश्चंद्र के नियम पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करूणा से नहीं।

न्याय और करूणा का विरोध प्राय: सुनने में आता है। न्याय से ठीक प्रतिकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे 1000 रूपये उधार लिए है तो न्याय यह है कि वह हमें 1000 रूपये लौटा दे। यदि किसी ने कोई अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दंड मिले। यदि 1000 रू लेने के उपरांत उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यंत सोचनीय हो गई तो न्याय पाने के विचार का विरोध करूणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता, गिड़गिड़ाता और कान पकड़ता है तथा पूर्ण दंड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है, तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करूणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करूणा करनेका सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रूपया चाहिए या जिसका अपराध किया गया है उसको है, न्यायकर्ता या तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के 1000 रू अलग किए या अपराध द्वारा जो क्षतिग्रस्त हुआ. विश्वात्मा उसी के हाथ में करूणा ऐसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करूणा सेंत का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्ता को करूणा है तो वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हजार, पांच सौ अपने पास से दे दे या दंडित व्यक्ति तथा उसके परिवार की और प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करूणा का द्वारा खुला है।

11.6 निबंध का सार : करूणा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित मनोविकार सम्बंधी निबंधों में 'करूणा' का अत्यधिक महत्त्व है। यह निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सर्वश्रेष्ठ निबंधों में से एक है।

दूसरों के दुख के परिज्ञान से जो दुख होता है वह करूणा दया आदि नामों से पुकारा जाता है। करूणा दुख का ही एक भेद है। करूणा का उल्टा क्रोध है क्योंकि उसके उत्पन्न होने पर हम दूसरों की हानि की चेष्टा करते हैं। करूणा उत्पन्न होने पर उसकी भलाई का उद्योग करते हैं। दूसरी तरफ लोभ आनंद की

श्रेणी में है पर लोभी अपनी प्रिय वस्तु को हानि नहीं पहुँचाता है, उल्टे रक्षा करता है।

मनष्य समाजिक प्राणी है और उसके सुख-दुख का बहुत सा अंश दूसरों के कामों और उनकी अवस्था पर निर्भर करता है। दूसरों के दुख से दुखी होना और सुख से सुखी होना उसके लिए स्वाभाविक है। जहाँ यह नियम है वहाँ यह भी देखा गया है कि हम दूसरों के सुख से सुखी होने की अपेक्षा उनके दुख से दूखी अधिक और शीघ्र होते हैं। करूणा की तीव्रता का सापेक्ष-विधान जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्यविभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए यह भी स्वाभाविक ही है कि परिचितों के दुख पर हम अपरिचितों के दुख से अधिक दुखी होते हैं।

कृपा और करूणा में भेद यह है कि कृपा में आत्मभाव छिपा रहता है और उसके द्वारा पहुँचाया सुख एक प्रकार का प्रतीकार है। पर करूणा द्वारा पहुँचाया सुख दु:ख की निवृत्ति है जिसकी जीवनमें अत्यन्त आवश्यकता है। प्रिय के वियोजनित दुख में करूणा का जो अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। अनिश्चयत बात पर दुखी होना ज्ञानियों के निकट अज्ञान है। इसीलिए किसी प्रान्तीय भाषा में करूणा को मोह भी कहते है। मनुष्य संसार आपने आप बनाता है। संसार कहने सुनने के लिए है।

वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं, जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। सहानुभूति उस वेग सहित दु:ख को कहते हैं जो अपने परिचितों के थोड़े से क्लेश या दु:ख को देखकर होती है। करूणा में आदान – प्रदान का भाव नहीं रहता तथा साथ ही स्मृति और अनुमान, भावों के केवल सहायक हैं। जीवन में मनोवेगों को मारना अच्छा नहीं है। करूणा का सीधा और व्यवहारिक संबंध ह्रदय की सत्यता, तटस्थता एवं आत्मिक त्याग से है। करूणा के साथ-साथ शुद्ध असत्यता को नहीं रखा जा सकता ,करुणा शुद्ध, सात्विक मनोविकार है।

11.7 करूणा : संदर्भ सहित व्याख्या

(क) जब बच्चे को .... चैन से रक्खा।

शब्दार्थ - संबंध ज्ञान – संयोग या संगति से प्राप्त ज्ञान

करूणा - दुख का वह भेद जिसका संबन्ध ज्ञान से है

विवेचनक्रम - भले बुरे ज्ञान, निर्णय

आरोप - संस्थापन, कल्पाना

कार्य- कारण सम्बन्ध- प्रत्येक कार्य के मूल में एक कारण होता है

अभ्यस्त - आदी, चेष्टा, प्रयास

उद्योग – प्रयत्न उत्तेजना, प्रोत्साहन

वाक्यार्थ - बिना संबंध की प्रवृत्ति को जाने दुख की आधारभूमि पर स्थापितकरूणा नाम मनोविकार की नींव नहीं पड़ती जब एक छोटा बच्चा पहले-पहले अपने और दूसरे व्यक्ति के मध्य के संबंध को जानता है तभी वह करूणा के स्वरुप या मानसिकता को समझ सकता है। एक बार संबंधों की पहचान हो जाने पर ही दुख की अधिकता के फलस्वरूप मानव दुख की वास्तविक अनुभूति को समझता चलता है। दुख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करूणा का उल्टा क्रोध है. करूणा और क्रोध दोनों की उत्पत्ति कुछ दुख से है पर परिणाम दोनों का भिन्न है। करूणा के द्वारा हम दूसरे को लाभ पहुंचाते हैं परन्तु क्रोध के द्वारा हम दूसरे को हानि ही पहुंचाना चाहते हैं।

(ख) ऊपर कहा जा.. हो जाता है।

शब्दार्थ -

अवलम्बित	-	आधारित
प्रवाह	-	प्रसार, फैलाव
तुष्टि	-	सुख सनतोष, आनंद
अपेक्षा	-	आवश्यकता
सुहृदय	-	प्रिय,
परिज्ञान	-	निश्चय, परिचय
निर्जन	-	एकान्त, निर्वाह- वयतीत, कोटि-श्रेणी
निर्लिप्त	-	नि:स्वार्थ
वितृत्ति	-	छुटकारा, त्याग
निराकरण	-	दूर करना, त्याग
प्रतीकर	-	बदला
आत्मभाव	-	अपनापन

वाक्यार्थ- जैसा कि पहले कहा गया था कि जब मनुष्य के मनोविकारों के क्षेत्र का फैलाव मनुष्य के सामाजिक संबंधों की अपेक्षा में होते हैं । जैसे-जैसे मनुष्य का सामाजिक दायरा बढ़ता जाता है वैसे-वैसे मनुष्य का आन्तरिक मनोजगत भी अपना विस्तार करता जाता है।

समान्यत: हमें दूसरों का दुख देखकर दुख होता है तथा उत्साह एवं सुख देखकर उत्साहित एवं सुखी अनुभव करता है। निबंधकार मानवीय स्वाभाव की एक विशेष प्रवृत्ति की तरफ इंगित करते हुए कहता है कि यह बात सत्य है कि हम किसी अंजान व्यक्ति के दुख को देखकर स्वयं दुखित हो जाते हैं परन्तु किसी राह चलते अंजान व्यक्ति की खुशी को देखकर खुशी का अनुभव नहीं करने लगते हैं। साथ ही यदि किसी व्यक्ति के दुख का कारण उसके बुरे तथा अमानवीय कार्य है तो उस स्थिति में हमारा उस अपराधी व्यक्ति के लिए दुख खत्म होकर क्रोध का रूप धारण कर लेता है।

(ग) दूसरों के दुख ....नहिं अधमाई।

शब्दार्थ- तीव्रता - अधिक्य, तेजी
शील - सदाचार
सद्वृत्ति - बोलचाल में चित्त की कोमलता
कुपित - क्रोधित, नाराज
समकक्ष - समान
वर्जित - रहित, त्याज्य

वाक्यार्थ - आचार्य शुक्ल कहते हैं कि सुख एवं दुख मनुष्य के भीतर मनोजनित मनोविकारों की विशिष्ट श्रेणी के भाव है। शील या सदाचार सम्बंधी करूणा और सहानुभूति में अनतर है। पहले में विवेक है, दूसरे में प्रबल गति। शील का सीधा संबंध मानव के भीतर स्थापित नैतिक सत्यता एवं उसकी दृढ़ता से है। उसके समकक्ष रूखे नियम बंधन को नहीं रखा जा सकता है. सिद्धान्तों की सहायता से आप सदाचार का निर्माण कर सकते हैं-उनसे सहायता ले सकते हैं पर नियम और शील को बराबर कहना बड़ी भूल कही जाएगी शील का संबंध भान सत्य से न होकर मनुष्य की मूल नैतिक प्रवृत्ति से होता है जबकि नियम- सिद्धान्त का ताल्लुक मात्र अपराध-दण्ड विधान से होता है। जिस काम के करने को अन्त: कारण स्वीकार न करेंउसे करना पाखण्ड है। बिना वास्तविक भावों के आचरण करना दिखावा है, मनुष्य के मन में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करूणा है। महाकवि तुलसीदास के शब्दों को उद्धृत करते हुए लेखक कहता है कि- ‘’दूसरों का अच्छा करने के अतिरिक्त और कोई बड़ा धर्म नहीं एवं साथ ही दूसरों को पीड़ा पहुँचने के अतिरिक्त और कोई बड़ी दुष्टता नहीं।

(घ) जिस व्यक्ति ....विकल होते हैं।

शब्दार्थ –	व्यक्त	–	प्रगट
	खण्डित	-	टूटना, भ्रष्ट होना
	कुव्यवहार	-	दुर्व्यवहार
	विश्वात्मा	-	ईश्वर
	चंचल	-	अस्थिर
	मुण्डे-मुण्डे भिन्न वस्तु-		प्रत्येक व्यक्ति अलग है
	वक्ता	-	भाषणकर्ता, बोलने वाला।

वाक्यार्थ - अपने जीवन में हम जिस भी व्यक्ति से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं वह हमारे जीवन के बहुत से मनोभावों से सम्बंध रखते हैं हम अपना सामाजिक जीवन स्वयं ही निर्मित करते हैं। हम जिन व्यक्तियों के साथ रहते हैं वही हमारे सामाजिक जीवन की प्रवृत्ति को निश्चित करते हैं. करूणा का तीव्रता के साथ हमारे भीतर उपस्थित होना इसी प्रिय व्यक्ति के आंशिक अथवा पूर्ण वियोग पर निर्भर करता है. वियोग के पश्चात् उस व्यक्ति से संबंध स्मृतियाँ हमारे मन में निरंतर उपस्थित होती है तथा पूर्व में घटित प्रत्येक घटना का स्मरण क्रमश: होता जाता है।

(ड) करूणा अपना बीज .... न रहती है।

शब्दार्थ	आलंबन	-	सहारा, आधार, कारण
	औपन्यासिक	-	उपन्यासपरक, उपन्यास से संबंधित
	प्रभावोत्मादक	-	अति प्रभावकारी
	दक्ष	-	चतुर प्रवीण
	परिमित	-	सीमा के भीतर, छोटा

वाक्यार्थ - प्रस्तुत गद्यांश की प्रथम पंक्ति एक विशिष्ट सूक्ति है जो कि सम्पूर्ण निबंध की बीज पंक्ति है । लेखक कहता है कि किसी के प्रति प्रदर्शित करूणा के बदले कभी करूणा नहीं पाई जाती है। यदि हम किसी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हैं तो बदले में प्रेम पाते हैं वैसे ही यदि हम किसी के प्रति क्रोध प्रदर्शित करते हैं तो बदले में हमें भी क्रोध अथवा घृणा प्राप्त होती है परन्तु यदि हम किसी के प्रति करूणा प्रदर्शित करते हैं तो उसके बदले हमें करूणा प्राप्त नहीं होती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार आमान्य रूप से मनुष्य का ज्ञान संकुचित होती है। मनुष्य को जितना जगत-रूप-व्यापार सीधे दिखई देता है वही उसका ज्ञान क्षेत्र होता है परनतु अपनी

स्मृति एवं मनोविकारों की सहायता से मनुष्य अपने ज्ञान एवं अनुभव क्षेत्र का बहुविध विकास करता चलता है। मानव मन के मनोविकारों का वास्तविक महत्व यही है कि वह मानव मात्र के ज्ञान, अनुभव व समाज का विस्तार प्रत्यक्ष दृष्टि की अपेक्षा अधिक करता है।

11.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सम्पूर्ण व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन को जान चुके होंगे।
- आचार्य शुक्ल के साहित्यिक व्यक्तित्व के क्रमबद्ध विकास तथा हिन्दी साहित्य में उनके महत्त्वको जान चुके होंगे।
- मानव मन के भीतर व्याप्त मनोविकारों में महत्वपूर्ण 'करूणा' के भाव की जानकारी तथा उसकी आंतरिक बुनावट को समझ गए होंगे।
- मानव जीवन में 'करूणा' के महत्त्व तथा साहित्य में करूणा की उपयोगिता एवं उसकी प्रायोगिक अभिव्यक्ति का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे

11.9 शब्दावली

संबंधज्ञान	-	संयोग से प्राप्त ज्ञान
विवेचनक्रम	-	भले-बुरे का निर्णय
परिज्ञान	-	निश्चय, परिचय
निवृत्ति	-	छुटकारा
पूर्वापर	-	आगे पीछे का
मातहत	-	नीचे काम करने वाला कर्मचारी
अंकिचन	-	निर्धन
वैचारिक	-	विचार से संबंधित
प्रवृत्ति	-	आदत
परिमार्जित	-	शुद्ध
अशक्त	-	दुर्बल
छद्म शिष्टता	-	बनावटी व्यवहारिक रूप,

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) करुणा ,उत्साह, काव्य में प्राकृतिक - दृश्य, कविता क्या है .

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. जन्म सन् 4 अक्टूबर 1884 , मृत्यु 2 फरवरी 1941
2. 1929 ई.
3. विचार वीथी (1930 ई.)

(ख) सही विकल्प चुनिए- 1. कल्पना का आनंद

11.11संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचन्द्र तिवारी,2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली पृ. 7-10
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 505
3. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, इलाहाबाद, पृष्ठ 137
4. चिंतामणि- भाग 1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान दिल्ली
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचंद्र तिवारी, 2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ-43
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रन्थावली (सं.) ओमप्रकाश सिंह, 2007, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,
पृष्ठ. 366-374
7. चिंतामणि दर्शन,डा. हरिहरनाथ टण्डन, 1957, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ-157-159

11.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली (सं.) ओमप्रकाश सिंह, 2007, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन जगत, कृष्णदत्त पालीवाल, 1984
4. रामचंद्र शुक्ल, मलयज, 1987, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, रामचन्द्र तिवारी,2005, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

11.13 निबंधात्मक प्रश्न –

(क) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जीवन एवं साहित्यिक परिचय विस्तार से लिखिए।

(ख) हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के महत्व को प्रतिपादित करते हुए करूणा निबंध का सार अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई 12 पंडितों की पंचायत: परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

12.3.1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व

12.3.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : कृतित्व

12.3.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : निबंध साहित्य

12.4 ‘पंडितों की पंचायत’: परिचय

12.5 ‘पंडितों की पंचायत‘: पाठ

12.6 पंडितों की पंचायत : सार

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्य के निबंध विद्या का शास्त्रीय अध्ययन कर लिया है तथा साथ ही क्रमिक विकास के स्तर पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी से पूर्व के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उत्कृष्ट निबंध 'करूणा' का व्याख्या सहित अध्ययन भी कर लिया है।

प्रस्तुत इकाई में आप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखिए एक श्रेष्ठ निबंध 'पंडितों की पंचायत' की सव्याख्या पाठ करेंगे तथा साथ ही आचार्य हजारी प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व से भी परिचित होंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- ❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की सम्पूर्ण जीवन तथा उनकी साहित्यिक प्रतिभा के क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- ❖ 'पंडितों की पंचायत' का परिचय, पाठ एवं ससंदर्भ आलोचना का लाभ प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का महत्त्व एवं वर्तमान समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

12.3 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

12.3.1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: व्यक्तित्व

आधुनिक युग के मौलिक निबंधकार, उत्कृष्ट समालोचक एवं सांस्कृतिक विचारधारा के प्रमुख उपन्यासकार, साहित्येतिहासकार एवं निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म **19 अगस्त 1907 में बलिया** जिले के आरत दुबे का छपरा नामक गाँव में हुआ था। उनका परिवार ज्योतिष विद्या के लिए प्रसिद्ध था। उनके पिता पं. अनमोल द्विवेदी एवं माता का नाम ज्योतिष्मती था . आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पिता संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। द्विवेदी जी की प्रारंभिक शिक्षा गांव के स्कूल में ही हुई और वहीं से उन्होंने मिडिल की परीक्षा पास की। इसके पश्चात् उन्होंने इंटर की परीक्षा और 1930 में ज्योतिष विषय लेकर आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात द्विवेदी जी शांतिनिकेतन चले गए सन् 1950 तक वहां हिंदी-भवन में कार्य करते रहे। शांति-निकेतन में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षिति मोहन सेन के प्रभाव से साहित्य का गहन अध्ययन और उसकी रचना प्रारंभ की। हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित और सर्वमान्य हस्ताक्षर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की गतिशील परम्परा को साहित्यालोचना, समीक्षा, साहित्येतिहास, निबन्ध, उपन्यास,सौन्दर्यशास्त्रीय-विवेचन एवं कविता के सृजन द्वारा नयी दिशा प्रदान की. नवम्बर 1930 को उन्होंने हिन्दी शिक्षक के रूप में शान्ति निकेतन में कार्य आरम्भ किया और वहाँ 1950 तक रहे। सन 1941से 1947 तक

आचार्य द्विवेदी विश्वभारती विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका के संपादक रहे . 1950 में वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष नियुक्त हुए। 1960-67 तक उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में अध्यक्ष पद पर कार्य किया. 1968 में उनकी नियुक्ति पुनः काशी विश्वविद्यालय में हुई .1968-70 तक वे काशी हिंदू विश्व विद्यालय के रेक्टर पद पर कार्यरत रहे . 1957 में राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किए गये। वे अनेक संस्थानों से सम्बद्ध रहे। अन्तिम दिनों में वह उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष रहे। **19 मई 1979** को दिल्ली में आचार्य द्विवेदी ने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया।

द्विवेदी जी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली और उनका स्वभाव बड़ा सरल और उदार था। वे हिंदी अंग्रेज़ी, संस्कृत और बंगला भाषाओं के साथ-साथ मध्यकालीन भारतीय भाषाओं के भी विद्वान थे। वे संस्कृत ,अपभंश एवं भक्तिकालीन साहित्य के विशेषज्ञ थे । लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि देकर उनका विशेष सम्मान किया था। द्विवेदी जी के निबंधों के विषय भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य विविध धर्मों और संप्रदायों का विवेचन आदि है।

द्विवेदी जी की रचनाएं दो प्रकार की हैं, मौलिक और अनूदित। उनकी मौलिक रचनाओं में सूर साहित्य हिंदी साहित्य की भूमिका, कबीर, विचार और वितर्क अशोक के फूल, बाणभट्ट की आत्म-कथा आदि मुख्य हैं। प्रबंध चिंतामणी, पुरातन प्रबंध-संग्रह, विश्व परिचय, लाल कनेर आदि द्विवेदी जी की अनूदित रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने अनेक स्वतंत्र निबंधों की रचना की है जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

आचार्य द्विवेदी का हिंदी निबंध और आलोचनात्मक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। वे उच्च कोटि के निबंधकार और सफल आलोचक हैं। उन्होंने सूर, कबीर, तुलसी आदि पर जो विद्वत्तापूर्ण आलोचनाएं लिखी हैं, वे हिंदी में पहले नहीं लिखी गई। उनका निबंध-साहित्य हिंदी की स्थाई निधि है। उनकी समस्त कृतियों पर उनके गहन विचारों और मौलिक चिंतन की छाप है। विश्व-भारती आदि पत्रिकाओं के द्वारा द्विवेदी जी ने संपादन के क्षेत्र में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है । हजारी प्रसाद द्विवेदी की अनेकों रचनाएँ उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुई और कुछ अप्रकाशित हैं जिन्हें प्रकाशित किया जाना चाहिये। द्विवेदीजी मनुष्य को सर्वोपरि मानते थे। उन्होंने अपने निबन्ध ”मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है” में लिखा हैं ”समूचे जन समूह में भाषा और भाव की एकता और सौहाद्र का होना अच्छा है। इसके लिए तर्कशास्त्रियों की नहीं ऐसे सेवाभावी व्यक्तियों की आवश्यकता है जो समस्त बाधाओं और विघ्नों को शिरसा स्वीकार करके काम करने में जुट जाते हैं।” हजारी प्रसाद द्विवेदी नयी पीढ़ी के लेखकों से सन्तुष्ट हैं। वह लिखते हैं – ”मुझे इस बात की खुशी है कि नये साहित्यकार मनुष्य के दुख के प्रति जागरुक है और इस बात से व्याकुल है कि कहीं न कहीं कोई गल्ती अवश्य है जो इसको दूर करने की हमारी सारी आकाक्षाओं के बावजूद सारे प्रयत्नों को विफल बना रही है। बाधा मुख्य रूप से हमारे सामाजिक संगठन में है और जिस व्यवस्था के ऊपर इसको दूर करने की जिम्मेदारी है उस व्यवस्था के ढांचे की संरचना मे है।” हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। हिन्दी विश्व की

समृद्ध भाषा है जिसमें विश्व स्तर के साहित्कार दिये हैं। अनेक दिवंगत दिग्गज साहित्यकारों की रचनाएँ आज भी हिन्दी पाठकों से वंचित हैं क्योंकि इनकी बहुत सी रचनाएँ अप्रकाशित हैं तथा अनेकों रचनाएँ अपने नये संस्करण की प्रतीक्षा कर रही हैं। इनके प्रकाशन की दिशा में प्रयत्न किया जाना चाहिये।

12.3.2 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: कृतित्व

साहित्यिक दृष्टि से आचार्य द्विवेदी का साहित्य न केवल विपुल है अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं मानव जाति की सांस्कृतिक चेतना का वाहक भी है . आचार्य द्विवेदी ने साहित्य की लगभग सभी प्रमुख विधाओं में रचना की थी . कहना न होगा कि आचार्य द्विवेदी का लेखन एक तरफ जहाँ अपनी विपुलता के लिए अपना अलग स्थान रखता है वहीं दूसरी तरफ अपनी सृजनात्मक सम्पन्नता के कारण विश्व साहित्य की अनमोल देन है .आचार्य द्विवेदी की प्रमुख रचनाएँ निम्नवत हैं

उपन्यास

1. बाणभट्ट की आत्मकथा , 1946
2. चारू चंद्रलेख ,1963
3. पुनर्नवा , 1973
4. अनामदास का पोथा, 1976

आलोचना

5. सूर साहित्य , 1936
6. कबीर , 1942
7. कालिदास की लालित्य योजना, 1968
8. मृत्युंजय रवीन्द्र, 1963
9. नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक ,
10. मेघदूत :एक पुरानी कहानी, 1957
11. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो,1952
12. लालित्य तत्व, 1994
13. साहित्य का साथी, 1955

इतिहास ग्रन्थ

14. हिंदी साहित्य की भूमिका , 1940
15. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, 1952
16. हिंदी साहित्य का आदिकाल, 1952

सांस्कृतिक चिंतन

17. मध्यकालीन बोध का स्वरूप, 1970
18. सहज-साधना, 1963
19. मध्यकालीन धर्म-साधना, 1952

20. नाथ संप्रदाय , 1950
21. सिक्ख गुरूओं का पुण्य-स्मरण, 1980
22. रामानंद की हिन्दी रचनाएँ , 1955
23. नाथ सिद्धों की बानियाँ ,1957
24. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद , 1940

निबंध साहित्य

25. अशोक के फूल ,1948
26. कल्पलता,1951
27. कुटज, 1954
28. विचार और वितर्क , 1953
29. विचार प्रवाह ,1959
30. आलोक पर्व ,1972

अन्य रचनाएँ

1. कविताएं (खड़ी बोली, संस्कृत)
2. कविताएं (ब्रजभाषा)
3. कविताएं (अनूदित)
4 वैयक्तिक संस्मरण
5. कहानियाँ
6. फलित ज्योतिष

विशेष :

- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद द्वारा ‘कबीर‘ पुस्तक पर मंगलाप्रसाद पारितोषक 1947 ई.
- लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ने डॉक्टर ऑफ लिटरेचर उपाधि प्रदान की 1947 ई.
- ऑफिशियल लैंग्वेज कमीशन (प्रथम) के सदस्य 1955 ई.
- पद्म भूषण, 1957 ई.
- संयोजक, हिन्दी परामर्श समिति, साहित्य अकादमी, 1954 ई.-1964 ई. तक
- नेशनल बुक ट्रस्ट के ट्रस्टी, 1958 ई.
- चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट के ट्रस्टी, 1958 ई.
- ‘सूर साहित्य’ पुस्तक पर सरजूप्रसाद स्वर्णपदक, मध्यभारत हिन्दी समिति, इन्दौर

- 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय की एक्जीक्यूटिव कांउसिल के सदस्य 1950-1953
- काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष 1952-1953 ई.
- काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलेखों की खोज के संचालक, 1952 ई.
- 'नाथ सम्प्रदाय' पुस्तक (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)
- 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के व्याख्यान)
- 'सहज साधना' (मध्य प्रदेश सरकार द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला)
- 'साहित्य का मर्म' (लखनऊ वि.वि. द्वारा आयोजित व्याख्यान माला)
- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' - नागरी प्रचारिणी सभा का सर्वोत्तम पदक/म0प्र0 द्विवेदी स्वर्ण पदक,कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद साहित्य अकादमी की ओर से
- 'हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास' (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा, उत्तम पाठ्य पुस्तक पुरस्कार)
- हिन्दी विश्व कोष में सम्पादक समिति के सदस्य तथा एडवाइजरी बोर्ड के सदस्य।
- केन्द्रीय हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार 1973 ई.
- शोध पत्रिकाओं का संपादन: विश्वभारती पत्रिका, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन , हिन्दुस्तानी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी जर्नल
- रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनेक ग्रंथों के अनुवाद

12.3.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: निबंध साहित्य

वर्गीकरण की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबंध दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं . विचारात्मक और आलोचनात्मक। विचारात्मक निबंधों की भी दो श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणी के निबंधों में दार्शनिक तत्वों की प्रधानता रहती है। द्वितीय श्रेणी के निबंध सामाजिक जीवन संबंधी होते हैं। आलोचनात्मक निबंध भी दो श्रेणियों में बांटें जा सकते हैं। प्रथम श्रेणी में ऐसे निबंध हैं जिनमें साहित्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया गया है और द्वितीय श्रेणी में वे निबंध आते हैं जिनमें साहित्यकारों की कृतियों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार हुआ है। द्विवेदीजी के इन निबंधों में विचारों की गहनता, निरीक्षण की नवीनता और विश्लेषण की सूक्ष्मता रहती है। द्विवेदी जी की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। उन्होंने भाव और विषय के अनुसार भाषा का चयनित प्रयोग किया है। उनकी भाषा के दो रूप दिखलाई पड़ते हैं . (1) **प्राँजल व्यावहारिक भाषा** (2) **संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय भाषा**। प्रथम रूप द्विवेदी जी के सामान्य निबंधों में मिलता है। इस प्रकार की भाषा में उर्दू और अंग्रेज़ी के शब्दों का भी समावेश हुआ है। द्वितीय

शैली उपन्यासों और सैद्धांतिक आलोचना के क्रम में परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी की विषय प्रतिपादन की शैली अध्यापकीय है। शास्त्रीय भाषा रचने के दौरान भी प्रवाह खण्डित नहीं होता।द्विवेदी जी की रचनाओं में उनकी शैली के निम्नलिखित रूप मिलते हैं .

1. **गवेषणात्मक शैली** - द्विवेदी जी के विचारात्मक तथा आलोचनात्मक निबंध इस शैली में लिखे गए हैं। यह शैली द्विवेदी जी की प्रतिनिधि शैली है। इस शैली की भाषा संस्कृत प्रधान और अधिक प्रांजल है। वाक्य कुछ बड़े-बड़े हैं। इस शैली का एक उदाहरण देखिए - "लोक और शास्त्र का समन्वय, ग्रहस्थ और वैराग्य का समन्वय भक्ति और ज्ञान का समन्वय भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय कथा और तत्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चांडाल का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।"

2. **वर्णनात्मक शैली** - द्विवेदी जी की वर्णनात्मक शैली अत्यंत स्वाभाविक एवं रोचक है। इस शैली में हिंदी के शब्दों की प्रधानता है साथ ही संस्कृत के तत्सम और उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। वाक्य अपेक्षाकृत बड़े हैं।

3. **व्यंग्यात्मक शैली** - द्विवेदी जी के निबंधों में व्यंग्यात्मक शैली का बहुत ही सफल और सुंदर प्रयोग हुआ है। इस शैली में भाषा चलती हुई तथा उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

4. **व्यास शैली** - द्विवेदी जी ने जहाँ अपने विषय को विस्तारपूर्वक समझाया है वहां उन्होंने व्यास शैली को अपनाया है। इस शैली के अंतर्गत वे विषय का प्रतिपादन व्याख्यात्मक ढंग से करते हैं और अंत में उसका सार दे देते हैं।

हमने पहले ही लक्ष्य कर लिया है कि साहित्यिक समालोचना के सिवा और भी बहुत.से ऐसे निबंध हैं जो साहित्य के अन्दर माने जा सकते है। निबंध का प्रचलन भी कोई नया नहीं है। पुराने जमाने से ही निबंधों का प्रचार है। हमने यह भी देखा है कि किसी प्रतिपाद्य सिद्धान्त के विरूद्ध जितने प्रमाण हो सकते थे उनको एक-एक करके उठाना और उनकी समीक्षा करते हुए अपने सिद्धान्त पर पहुंचना यही पुराने निबंधों का कार्य था। परन्तु नये युग में जिन नवीन ढंग के निबंधों का प्रचलन हुआ है वे 'तर्कमूलक' की अपेक्षा 'व्यक्तिगत' अधिक हैं। ये व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज हैं। जो निबंध किसी तत्ववाद के विचार के लिए लिखे जाते हैं उनमें थोड़ा-बहुत प्राचीन ढंग अब भी पाया जाता है। साधारणतः जिन निबंधों में निस्संग विचार का प्राधान्य होता है वे साहित्यिक आलोचना के प्रसंग में आलोचित नहीं होते। स्वयं आचार्य द्विवेदी के शब्दों में निबन्धों का वितरण निम्न प्रकार है - निबंधों की नाना कोटियाँ हैं। उनको साधारणतः पांच श्रेणियों में बाँट जा सकता है. 1. वार्तालाप-मूलक 2 व्याख्यान-मूलक 3. अनियंत्रित गप्प-मूलक 4 स्वगतचिन्तन-मूलक 5. कलह-मूलक। इस प्रकार का विभाजन बहुत अच्छा नहीं है। इसमें साहित्यिक सूक्ष्मता नहीं है। आपात दृष्टि ही प्रधान है।

(1) वार्तालाप मूलक निबंध का लेखक मन-ही-मन एक ऐसे वातावरण कल्पना करता है जिसमें कुछ सच्चे जिज्ञासु लोग किसी तत्व का निर्णय करने बैठे हों और अपने-अपने विचार

सत्य निर्णय की आशा से सहज भाव से प्रकट करते जाते हों (2) परन्तु व्याख्यान मूलक निबंध लेखक व्याख्यान देता रहता है। वह अपनी युक्तियों और तर्कों को बिना इस बात की परवा किए उपस्थित करता जाता है कि कोई उसे टोक देगा। (3) अनियंत्रित गप्प मारते समय गप्प करने वाला हल्के मन से बातें करता है वह अपने विषय के उन सरस और हास्योद्रेचक पहलुओं पर बराबर घूम-फिर कर आता रहता है,जो उसके श्रोता के चित्त को प्रफुल्ल कर देगा। (4) स्वगत चिंतन मूलक लेखक अपने आप से ही बात करता रहता है। उसके मन में जो युक्तियाँ उठती रहती हैं उन्हें तन्मय होकर वह विचारता जाता है। पर-पक्ष की आशंका उसे नहीं रहती। (5) परन्तु कलह-मूलक निबंध का लेखक अपने सामने मानो एक प्रतिपक्षी को रखकर उससे उत्तेजना पूर्ण बहस करता रहता है प्रतिपक्षी की युक्तियों का निरास करना उसका उतना लक्ष्य नहीं होता जितना अपने मत को उत्तेजित होकर व्यक्त करना। इस अन्तिम श्रेणी के निबंधों में कभी-कभी अच्छी साहित्यिक रचना मिल जाती है पर साधारणतः ये साहित्य की श्रेणी के बाहर जा पड़ते हैं।

निबंधों के व्यक्तिगत होने का अर्थ यह नहीं है कि उनमें विचार-श्रृंखला न हो। ऐसा होने से तो वे प्रलाप कहे जायँगे। संसार में हम जो कुछ देखते हैं वह द्रष्टा को विभिन्नता के कारण नाना भाव से प्रकट होते है। अपनी रूचि और संस्कार के कारण किसी द्रष्टा का ध्यान वस्तु के एक पहलू पर जाता है तो दूसरे द्रष्टा का दूसरे पहलू पर। फिर वस्तुओं के जो पारस्परिक संबंध है वे इतने तरह के हैं कि इन संबंधों में से सब सब की दृष्टि में नहीं पड़ते। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति यदि ईमानदारी से अपने विचारों को व्यक्त कर ले तो हमें नवीन का परिचय मूलक आनंद मिल सकता है और साथ ही उस उद्देश्य की सिद्धि भी हो सकती है जो साहित्य का चरम प्रतिपाद्य है। द्रष्टा के भेद से दृश्य का अभिनव रूप हमें दूसरे के हृदय में प्रवेश करने की क्षमता देता है और हम केवल अपने व्यक्तिगत रूचि-अरूचि के संकीर्ण दायरे से निकल कर दूसरों की अनुभूतियों के प्रति संवेदनशील होते हैं । वस्तुतः जो निबंध इस उद्देश्य की ओर उन्मुख करे वही साहित्यिक निबंध कहे जाने का अधिकार है। जो लेख हमारे हृदय की अनुमतियों को व्यापक और संवेदनाओं की तीक्ष्ण नहीं बनाता वह अपने उद्देश्य से च्युत हो जाता है। इस व्यक्तित्व अनुभूति के कारण ही साहित्यिक निबंध-लेखक निःसंग तत्वचिन्तक से भिन्न हो जाता है। " तत्वचिन्तक या वैज्ञानिक से निबंध-लेखक की भिन्नता इस बात में भी है कि निबंध-लेखक जिधर चला जाता है उधर संपूर्ण मानसिक सत्ता अर्थात बुद्धि और भावात्मक हृदय दोनों लिए हुए। किसी बात का अर्थ-सम्बन्ध सूत्र पकड़े हुए लेखक करूण स्थलों की ओर झुकता और गंभीर वेदना का अनुभव करता चलता है जो विनोदशील हैं उनकी दृष्टि उसी बात को लेकर उसके ऐसे पक्षों की ओर दौड़ती है जिन्हें सामने पाकर हँसे बिना नहीं रह सकता। पर सब अवस्थाओं में कोई एक बात अवश्य चाहिए। इस अर्थगत विशेषता के आधार पर ही भाषा और अभिव्यंजना प्रणाली की विशेषता,शैली की विशेषता बनकर खड़ी हो सकती है। जहाँ नाना अर्थ-संबंधों का वैचित्र्य नहीं, जहाँ गतिशील अर्थ की परंपरा नहीं, वहाँ एक ही स्थान पर खड़ी-खड़ी, तरह-तरह की मुद्रा और उछलकूद दिखाती हुई भाषा केवल तमाशा करती हुई जान पड़ेगी " - **रामचंद शुक्ल।**

चूँकि व्यक्तिगत रूचि और संस्कार अनन्त प्रकार के हैं और भिन्न वस्तु के अर्थ-संबंध भी जो इन रूचियों और संस्कारों को प्रभावित करते है अनन्त प्रकार के हैं इसलिए व्यक्तिगत अनुभूतिमूलक निबंधों की केवल मोटी-मोटी श्रेणियाँ ही बताई जा सकती है। इस क्षेत्र में अनुकरण नहीं चल सकता, क्योंकि कोई भी दो व्यक्ति हू-ब-हू एक ही रूचि और एक ही संस्कार के नहीं होते। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं में ऐसे-ऐसे निबंध-लेखक हैं जिनकी समानता दूसरी भाषाओं में खोजी नहीं जा सकती। ये आधुनिक युग के अत्यन्त सजीव साहित्यांग हैं। उनमें नित्य नवीन तत्वों का समावेश और परिहार होता जा रहा है। निबंध-लेखक भी वस्तुतः एक समालोचक ही है। उसकी समालोचना पुस्तकों की नहीं होती बल्कि उन वस्तुओं की होती है जो पुस्तकों का विषय है।

12.4 'पंडितों की पंचायत': परिचय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का लिखा यह निबंध उनकी पुस्तक 'कल्पलता' में संकलित है। 'कल्पलता' आचार्य द्विवेदी का लिखा हुआ निबंध संग्रह है। डॉ. राजमल बोरा के अनुसार इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1951 में हुआ था। इस आधार पर कहा जा सकता है कि संभवत: यह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का दूसरा निबंध संग्रह था. इस निबंध संग्रह में 'पंडितों की पंचायत' 'केतु दर्शन' 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' 'ठाकुर जी की बटोर' 'महात्मा का महाप्रयाण ' आदि अनेक महत्वपूर्ण निबंध संकलित हैं। कहना न होगा कि जब इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ तब आचार्य द्विवेदी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद पर कार्यरत थे, परन्तु 1951 में प्रकाशित 'कल्पलता' में संकलित निबंधों का लेखन 1951 से पूर्व के वर्षों में हुआ होगा। आपको स्मरण ही होगा कि काशी विश्वविद्यालय में आने से पूर्व 1930 से 1950 तक आचार्य द्विवेदी शांतिनिकेतन के हिन्दी भवन में कार्यरत थे . वहाँ रहते हुए आचार्य द्विवेदी ने गुरुदेव रविन्द्र

12.5 ' पंडितों की पंचायत ': पाठ

यह संयोग की ही बात कही जाएगी कि इस बार के एकादशीवाले झगड़े की सभा में मुझे भी उपस्थित रहना पड़ा। मैं बिलकुल ही नहीं जानता था कि काशी के पंचांग-निर्माताओं ने गाँव में रहने वाले विश्वास-परायण पंडितों को आलोडित कर दिया है। वैशाख शुक्ल पक्ष की एकादशी किसी ने बृहस्पतिवार के दिन बता दी है और किसी ने शुक्रवार के दिन। अचानक जब एक दिन पंडितों की पंचायत में मुझे बुला भेजा गया तो एकदम शस्त्रहीन योद्धा की भाँति मुझे संकोच के सहित ही जाना पड़ा। सभा में उपस्थित पंडितों में से अधिकांश मुझे जानते थे, किसी-किसी के मत से मैं घोर नास्तिक भी था, फिर भी न जाने क्यों इन्होंने मुझे बुलाने की बात का समर्थन किया। शायद इसलिए कि मेरा कुछ सम्बन्ध उक्त शास्त्रस से भी था। जो हो, मैंने इसे पंडित-मण्डली की उदारता ही समझी और शुरू से आखिर तक अपना कोई स्वतंत्र मत व्यक्त न करने का संकल्प-सा कर लिया।

मैं जब सभा स्थल पर पहुँचा तो विचार आरंभ हो चुका था। इसीलिए यह जानने का मौका ही नहीं मिला कि सभा का कोई सभापति या सरपंच है या नहीं। शायद इसका निर्वाचन ही नहीं हुआ था। मुझे देखते ही एक पंडित जी ने उत्तेजित भाव से कहा, कि देखिए 'विश्व-पंचांग' वालों ने क्या अनर्थ किया है। इन लोगों का गणित तीन लोकों से न्यारा होता है। भाई, सब जगह जबरदस्ती चल सकती है, लेकिन शास्त्र पर जबरदस्ती नहीं चलेगी।' मैंने मन-ही-मन इसका अर्थ समझ लिया। यह मुझे युद्ध क्षेत्र में आ डटने की ललकार थी। मैं हँसकर रह गया।

शास्त्र पर जबरदस्ती! मेरी भावुकता को जबरदस्त धक्का लगा। मेरा विद्रोही पाण्डित्य तिलमिलाकर रह गया। क्षण-भर में मेरे सामने संपूर्ण ज्योतिषिक इतिहास का रूप खेल गया। एक युग था, जब हमारे देश में लगध मुनि का अत्यंत सूक्ष्म गणित प्रचलित था लेकिन पंडितों का दल संतुष्ट नहीं हुआ, उसने किसी भी प्राचीन शास्त्र को प्रमाण न मानकर अपना अनुसंधान जारी रखा। गणना सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गई। अचानक भारतवर्ष के उत्तरी पश्चिमी किनारे पर यवनवाहिनी का भीषण रण-तूर्य सुनाई पड़ा। देश के विद्यापीठ-गांधार से लेकर साकेत तक एकाधिक बार विध्वस्त हुए। भारतवर्ष कभी जीतता रहा, कभी हारता रहा। कभी सारा भारतीय साम्राज्य समृद्धिशाली नगरों से भर गया, कभी श्मशान परिणित जनपदों के हाहाकर से झनझना उठा। पर अनुसंधान जारी रहा। भारतीय और ग्रीक पंडितों के ज्ञान का संघर्ष भी चलता रहा, हठात ईसा की चौथी शताब्दी में भारतीय ज्योतिष के आकाश में कई ज्वलंत ज्योतिष्क पिण्ड एक ही साथ चमक उठे। भारतीय गणना बहुत परिमाण में यावनी विद्या से समृद्ध हुई। यावनी विद्या हतदर्प होकर भारतीय गौरव को वरण करने लगी। उस दिन नि:संकोच भारतीय पंडितों ने घोषणा की ' यवन मलेच्छ हैं सही, पर इस (ज्योषतिष) शास्त्रक के अच्छे जानकार हैं। 'वे भी ऋषिवत पूज्य हैं, ब्राह्मण ज्योतिषी की तो बात ही क्या है.' (वृहत् संहिता)।

मैंने कल्पना के नेत्रों से देखा - महागणक आचार्य बराहमिहिर न्यायासन पर बैठकर तत्काल प्रचलित पाँच सिद्धान्तों के मतों का विचार कर रहे हैं। इनमें दो विशुद्ध भारतीय मत के प्राचीनतर सिद्धान्त हैं, दो में यावनी विद्या का असर है , पाँचवा (सूर्य सिद्धान्त) स्वतंत्र भारतीय चिंता का फल है, बराहमिहिर ने पहले दोनों यावनी प्रभावापन्न सिद्धान्तों की परीक्षा की। पौलिश का सिद्धान्तत अच्छा मालूम हुआ, रोमक भी उसके निकट ही रहा। आचार्य ने छोटी-मोटी भूलों का ख्याल न करते हुए साफ-साफ कह दिया-अच्छे हैं। फिर भी सूर्य सिद्धान्त् की जाँच हुई। आचार्य का चेहरा खिल उठा। यह और भी अच्छा था। और अन्त में ब्रह्म और शाकल्य के सिद्धान्तों की बारी आई। आचार्य के माथे पर जरा-सा सिकुड़न का भाव दिखाई दिया, उन्होंने दोनों को एक तरफ ठेलते हुए कहा-उहुँ! यह दूर-विभ्रष्ट- हैं।

पौलिशकृतोऽस्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमक: प्रोक्त :।
स्पष्टतर: सावित्र: परिशेषौ दूर-विभ्रष्टौ ।। (पंच सिद्धांतिका)

उस दिन किसी की हिम्मत नहीं थी कि आचार्य को शास्त्र पर जबरदस्ती करने वाला कहे। क्यों कि वह स्वतंत्र चिंता का युग था, भारतीय-समाज इतना रूढिप्रिय और परापेक्षी नहीं था। वह ले भी सकता था और दे भी सकता था। मैंने देखा ब्रह्मगुप्त के शिष्य भास्कराचार्य

निर्भीक भाव से कह रहे हैं, इस गणित स्कंध में युक्ति ही एक मात्र प्रमाण है, कोई भी आगम प्रमाण नहीं। यह बात सोलह आने सही थी और भारतीय पंडित-मंडली को सही बात स्वीकार करने का साहस था। पर आज क्या हालत है।

मैं जिस समय यह चिंता कर रहा था उसी समय पंडित लोग निर्णय-सिंधु और धर्म-सिंधु के पन्ने उलट रहे थे। नाना प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध ऋषियों, पुराणों और संहिताओं के वचन पढ़े जा रहे थे और उनकी संगतियाँ लगाई जा रही थीं। मैं उद्विग्न–सा होकर सोच रहा था कि वे निबंध ग्रंथ क्यों बनाए गए ? मुझे ऐसा लगा कि पश्चिम में एक आत्म विश्वासी धर्म का जन्म हुआ है जो किसी से समझौता नहीं जानता, किसी को मित्र नहीं मानता। उसके दाहिने हाथ के कठोर कृपाण के आक्रमण से बड़ी-बड़ी सभ्यताओं के लौह प्राचीर चूरचार हो जाते हैं, और बाँए हाथ के अमृत आश्वासन से पराजित जन-समूह एक नए जीवन और नए वैभव के साथ जी उठता है। जो एक बार उसके अधीन हो जाता है वही उसके रंग में आपाद-मस्त क रंग जाता है। वह इसलाम है।

इसलाम-विजय-स्फीत वक्ष होकर भारतीय संस्कृति को चुनौती देता है, उसके बारंबार आक्रमण से उत्तरी भारत संत्रस्त हो उठता है और कुछ काल के लिए समूचा हिन्दुकस्तान त्राहि-त्राहि की मर्म-भेदी आवाज से गूँज उठता है। धीरे-धीरे उत्तर के विद्यापीठ दक्षिण और पूर्व की ओर खिसकते जाते हैं। महाराष्ट्र नवीन आक्रमण से मोर्चा लेने के लिए कटिबद्ध होता है और भारतीय विश्वास के अनुसार सबसे पहले अपने धर्म की रक्षा को तैयार होता है। भारतीय पंडितों ने कभी इतनी मुस्तैदी के साथ स्तूपीभूत शास्त्र-वाक्यों की छानबीन नहीं की थी, शायद भारतीय संस्कृति को कभी ऐसे विकट ललकार के सुनने की संभावना नहीं हुई थी। क्षणभर के लिए ऐसा जान पड़ा कि भारतीय मनीषा ने स्वतंत्र चिंता को एकदम त्याग दिया है, केवल टीका, केवल निबंध, केवल संग्रह ग्रंथ! शास्त्र के किसी अंग पर स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखे जा रहे हैं। सर्वत्र टीका-पर-टीका, तिलक-पर-तिलक, तस्यापि तिलक. एक कभी समाप्त न होनेवाली टीकाओं की परम्परा।

देखते-देखते टीका-युग का प्रभाव देश के इस छोर से उस छोर तक व्याप्त हो जाता है। महाराष्ट्र, काशी, मिथिला और नवद्वीप टीकाओं और निबंधों के केंद्र हो उठते हैं। शास्त्र का कोई वचन छोड़ा नहीं जाता है, किसी भी ऋषि की उपेक्षा नहीं की जा रही है पर भयंकर सतर्कता के साथ प्रचलित लोक नियमों का ही समर्थन किया जाता है। इस नियम के विरोध में जो ऋषि-वचन उपलब्ध होते हैं उन्हें 'ननु' के साथ पूर्व पक्ष में कर दिया जाता है और उत्तर पक्ष सदा स्थानीय आचार्यों का समर्थन करता है। पंडितों की भाषा में इसी को संगति लगाना कहा जाता है। संगति लगाने का यह रूप मुझे हतदर्प भारतीय धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी जान पड़ी। मैं ठीक समझ नहीं सका कि शास्त्रीय वचनों के इन विशाल पर्वतों को खोदकर ये चुहिया क्यों निकाली जा रही है।

यह जो एकादशी व्रत का निर्णय मेरे सामने हो रहा है, जिसमें बीसियों आचार्यों के सैकड़ों श्लोक उद्धृत किए जा रहे हैं, अपने आप में ऐसा क्या महत्व रखता है जिसके लिए एक

दिन सैकड़ों पंडितों ने परिश्रमपूर्वक सैकड़ों निबंध रचे थे और आज आसेतु हिमाचल समस्त भारतवर्ष के पंडित उनकी सहायता से व्रत का निर्णय कर रहे हैं। क्या श्रद्धापूर्वक किसी एक दिन उपवास कर लेना पर्याप्त नहीं था! यदि एकादशी किसी दिन 55 दण्ड से ऊपर हो गई, या किसी दिन उदय काल में न आ सकी, या किसी दिन उदय काल में आ गई तो क्या बन या बिगड़ गया ? किसी भी एक दिन व्रत कर लेना पर्याप्त नहीं है ? मुझे 'ननु' 'तथा च' और 'उक्त च' की धुआँधार वर्षा से मध्य युग का आकाश इतना आविल जान पड़ा कि बीसवीं शताब्दी का ज्ञान लोक अनेक चेष्टाओं के बाद भी निबंधकारों की असली समस्या तक नहीं पहुँच सका। मैंने फिर एक बार सोचा, शास्त्रीय वचनों के इन विशाल पर्वतों को खोदकर यह चुहिया क्यों निकाली जा रही है।

लेकिन आज चाहे कुछ भी क्यों न जान पड़े, टीका-युग का प्रारंभ नितांत अर्थ-हीन नहीं था। मुझे साफ दिखाई दिया, भारतवर्ष की पदध्वस्त संस्कृत हेमाद्रि के सामने खड़ी है, चेहरा उसका उदास पड़ गया है, अश्रुक्षुब्द्ध -नयन कोटर शायी-से दिख रहे हैं, वदन कमल मुरझा गया है। हेमाद्रि का मुख-मंडल गंभीर है, भूदेश किंचित कुचिंत हो गए हैं, विशाल ललाट पर चिंता की रेखाएँ उभर आई हैं, अधरोष्ठ दाँतों के नीचे आ गया है - वे किसी सुदूर की वस्तु पर दृष्टि लगाए हैं। यह दृष्टि कभी अर्थ-हीन नहीं हो सकती, वह किसी निश्चित सत्य पर निपुण भाव से आबद्ध है। शायद यह भारतवर्ष के विच्छिन्न रस्म और रवाजों की बात होगी, शायद वह स्तूपीभूत शास्त्रों के मत-भेद की चिंता होगी, शायद वह संपूर्ण आर्य-सभ्यता को एक कठोर नियम-सूत्र में बाँधने की चेष्टा होगी, शायद वह नवागत प्रतिद्वंद्वी धर्म की अचिन्तनीय एकता के जवाब की बात होगी-पर वह थी बहुत दूर की बात। मुझे उसमें कोई संदेह नहीं रहा। जिस पंडित के लिए समग्र शास्त्र हस्तामलकवत् थे, जिसकी आँखों के सामने भारतीय संस्कृति नित्य कुचली जा रही थी, उस महामानव का कोई प्रयत्न निरर्थक नहीं हो सकता।

अगर सारा भारतवर्ष एक ही दिन उपवास करे, एक ही दिन पारायण करे, एक ही मुहूर्त में उठे-बैठे, तो निश्चिय ही वह एक सूत्र में ग्रंथित हो जाए। हेमाद्रि और उनके अनुयायियों का यही स्वप्न था, वह सफल भी हुआ। आज की यह पंचायत उसी सफलता का सबूत है। इस समय यह विचार नहीं हो रहा है कि विश्व पंचाग का मत मान्य है या और किसी का, बल्कि इस बात का निर्णय होने जा रहा है कि वह कौन-सा एक और एक-दिन होना चाहिए जब सारे भारत के गृहस्थ एक ही चिंता के साथ उत्तेजित होंगे। आज की सभा का यही महत्व है।

हेमाद्रि का स्वप्न सफल हुआ; पर उद्देश्य नहीं सिद्ध हो सका। भारतवर्ष एक ही तिथि को व्रत और उपवास करने लगा, एक मुहूर्त में उठने-बैठने के लिए बद्धपरिकर हुआ; पर एक नहीं हो सका। उसकी कमजोरी केवल रस्मों और रवाजों तक ही सीमित नहीं थी, यह तो उसकी बाहरी कमजोरी थी। जातियों और उपजातियों से उसका भीतरी अंग जर्जर हो गया था, हजारों संप्रदायों में विभक्त होकर उसकी आध्यात्मिक साधना शतच्छिद्र कलश की भाँति संग्रह हीन हो गई थी-वह हतज्योति उलका-पिंड की भाँति शून्य में छितराने की तैयारी कर रहा था।

लेकिन डूबते-डूबते भी सँभल गया। तकदीर ने तंत पर उसकी खबर ली, ज्योंही नाव डगमगाई, त्योंही किनारा दिख गया। और भी सुदूर दक्षिण से भक्ति की निविड़ घनघटा दिखाई पड़ी, देखते-देखते यह मेघखंड सारे भारतीय आसमान में फैल गया और आठ सौ वर्षों तक इसकी जो धारा सार वर्षा हुई, उसमें भारतीय साधना का अनेक कूड़ा बह गया, उसके अनेक बीज अंकुरित हो उठे। भारतवर्ष नए उत्साह और नए वैभव से शक्तिशाली हो उठा। उसने उदात्त कंठ से दृढ़ता के साथ घोषित किया-प्रेम पुमर्थों महान-प्रेम ही परम पुरूषार्थ है। विधि और निषेध, शास्त्र और पुराण, नियम और आचार, कर्म और साधना, इन सबके ऊपर है यह अमोघ महिमाशाली प्रेम। प्रेमी ,जाति और वर्ण से ऊपर है, आश्रम और संप्रदाय से अतीत है।

जिन दिनों की बात हो रही है, उन दिनों भारतवर्ष का प्रत्येक कोना तलवार की मार से झनझना रहा था, बड़े-बड़े मंदिर तोड़े जा रहे थे, मूर्तियाँ विध्वस्त की जा रही थीं, राज्य उखाड़े जा रहे थे। विच्छिन्न हिंदू-शक्ति जीवन के दिन गिन रही थी। और साथ ही दो भिन्न दिशाओं से उसे संहत करने का प्रयत्न चल रहा था। विच्छेद का संघर्ष नहीं चला था। तब तक दृश्य और अदृश्य एक ही साथ कैसे हो सकती है। पंडित लोग इस बात को इस प्रकार समझाते हैं- पहली तरह की गणना वह जो हमारे प्राचीन आचार्यों ने बताई है . यह ऋषि प्रोक्त गणना है इस पर से यदि ग्रह-गणित करो तो कुछ स्थूल आता है। अर्थात् उस स्थान पर से ग्रह कुछ इधर-उधर हटा हुआ नजर आता है। पर आधुनिक वैज्ञानिक गणना से वह ठीक स्थान पर दिखता है। यह तो कहा नहीं जा सकता कि ऋषियों की गणना गलत है, असल बात यह है कि वह अदृश्य गणना है वह आसमान में ग्रहों को यथास्थान दिखाने की गणना नहीं है; बल्कि एकादशी आदि व्रतों के निर्णय करने की गणना है . ये व्रत भी अदृश्य हैं , इनके फल भी अदृश्य हैं, फिर इनकी गणना भी क्यों अदृश्य न हो ? दृश्य -गणना आधुनिक विज्ञान-सम्मत है। इसका काम ग्रहण, यूति आदि दृश्य–पदार्थों को दिखाना है। कुछ पंडित पहली गणना को ही मानकर पत्रा बनाते हैं, कुछ दूसरी के हिसाब से, कुछ दोनों को मिलाकर। इन दोनों को मिलाने से जिस ‘दृश्यादृश्य’ नामक विसंष्ठुल गणना का अवतार हुआ है उसमें कई पक्ष हैं, कई दल हैं। कोई सामन, कोई निरयण, कोई रैवत, कोई चैत्र, अनेक मत खड़े हुए हैं। झगड़ा बहुत-सी छोटी-मोटी बातों तक पहुँचा हुआ है। उदाहरण के लिए मान लिया जाए कि किसी प्राचीन पंडित ने कहा कि ‘क’ से ‘ख’ स्थान का देशान्तर-काल एक घंटा है और आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया है कि एक घंटा नहीं पौन घंटा है। अब कौन-सा मत मान लिया जाए ? कोई एकादशी व्रत के लिए प्राचीनाचार्य की बात पर चिपटा हुआ है, दूसरा इतनी-सी बात में उदार होना पसंद करता है। इन अनेक झगड़ों के कारण एकादशी व्रत का निर्णय करना बड़ा मुश्किल हो गया है। प्रत्येक पत्रा अलग राय देता है, प्रत्येद पंडित अलग-अलग मत का समर्थन करता है। यह पश्चिमी विचारों के संघर्ष का परिणाम है। आज की इस छोटी-सी सभा की सृष्टि हुई। हिंदू सभ्यता नई चेतना के साथ जाग उठी, आज जो आलोचना चल रही है, वह उसी नई चेतना का भग्नावशेष है। उसमें कोई स्फूर्ति नहीं रह गई है। नीरस और प्रलम्बमान तर्क-जाल से उकताकर मैं उद्विग्न हो रहा था। जी में

आया, यहाँ से उठ चलूँ और इस विचार के आते ही मेरी कल्पना वहाँ से उठाकर मुझे अन्यत्र ले चली।

मुझे ऐसा जान पड़ा, मैं सारे जगत के छोटे-मोटे व्यापार को देख सकता हूँ। मेरी दृष्टि समुद्र पार करके अद्भुत कर्ममय लोक में पहुँची। यहाँ के मनुष्यों में किसी को फुरसत नहीं जान पड़ी, सबको समय के लाले पड़े थे। सारे द्वीप में एक भी ऐसा गाँव नहीं मिला, जहाँ घंटों तक एकादशी व्रत के निर्णय की पंचायत बैठ सके। सभी व्यस्त, सभी चंचल, सभी तत्पर! मैं आश्चर्य के साथ इनकी अपूर्व कर्म-शक्ति देखता रह गया। यहाँ से लाल, काली, नीली आदि अनेक तरंगें बड़े वेग से निकल रही थीं और सारे जगत् के वायुमंडल को मुहूर्त भर में तरंगित कर देती थीं। भारतवर्ष के शांत वायुमंडल पर भी ये बार-बार आघात करती हुई नजर आई। वह भी कुछ विक्षुब्धतर हो उठा। ये विचारों की लहरें थीं।

मैं सोचने लगा, यूरोप से आए हुए नए विचार किस प्रकार नित्य प्रति हमारे समाज को अज्ञात भाव से एक विशेष दिशा की ओर खींचे लिए जा रहे हैं। पुस्तकों, समाचार-पत्रों, चल-चित्रों और रेडियों आदि के प्रचार से हमारे समाज के विचारों में भयंकर क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहें हैं भयंकर इसलिए की अभी तक यह समाज क्रांतिकारी विचार के महाभार को सँभालने के योग्य नहीं हुआ है-उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। उसके कंधे दुर्बल हैं, उसकी छाती धड़क रही है। हम सन्त्रस्त की तरह इन विचारों को देखते हैं; पर जब अज्ञात भाव से ये ही हमारे अंदर घर कर जाते हैं तो या तो हम जान ही नहीं सकते या यदि जान सकते हैं तो घबरा उठते हैं। आज की सभा भी इसी घबराहट का एक रूप है।

जिस दिन तक भारतीय ज्योतिष-शास्त्र के साथ इसका कोई भी पंडित यह बात ठीक-ठीक नहीं समझ रहा है। एकादशी व्रत का यह झगड़ा शारदा एक्ट से कम खतरनाक नहीं है, बाबू भगवानदास के प्रस्तावित क़ानून के कम उद्वेगजनक नहीं है. अगर ये कानून भारतीय संस्कृति को हिला सकते हैं तो यह झगड़ा और भी अधिक हिला देगा।

लेकिन भारतीय संस्कृति क्या सचमुच ऐसी कमजोर नींव पर खड़ी है, कोई एक एक्ट, कोई एक कानून और कोई एक विचार-विनिमय उसे हिला दे ? मैं समझता हूँ, नहीं। मेरे सामने छः हजार वर्षों की और सहस्त्रों योजन विस्तृत देश की विशाल संस्कृति खड़ी है, उसके इस वृद्ध शरीर में जरा भी बुढ़ापा नहीं है, वह किसी चिरनवीन प्रेरणा से परिचालित है। उसके मस्तिष्क में सहस्त्रों वर्ष का अनुभव है; लेकिन थकान नहीं है, उसकी आँखों में अनादि तेज झलक रहा है, पर आलस्य नहीं है! वह अपूर्व शक्ति और अनंत धैर्य को अपने वक्ष-स्थल में वहन करती आ रही है। उसने अपने विराट परिवर्तनशील दीर्घ जीवन में क्या -क्या नहीं देखा है ? कुछ और देख लेने में उसे कुछ भी झिझक नहीं, कुछ भी हिचक नहीं है। जो लोग इस तेजोमय मूर्ति को नहीं देख सकते वही घबराते हैं, मैं नहीं घबरा सकता।

शास्त्र चर्चा अब भी चल रही थी। मैं सोचने लगा क्या यह जरूरी नहीं है कि सभी पंचांगवाले एकमत होकर एक ही तरह का निर्णय करें। शायद नहीं। क्यों कि हमारा देश एक विचित्र परिस्थिति में से गुजर रहा है। वह पुराना रास्ता छोड़ने को बाध्य है, किन्तु नया रास्ता

अभी मिला नहीं। वह कुछ पुराने के मोह में और कुछ नए के नशे में भूल रहा है। चलने दो, इन भिन्न-भिन्न मतों को, इन भिन्न–भिन्न पक्षों को, भारतीय जनमत स्वयमेव इनमें से अच्छे को चुन लेगा। इस दृष्टि से इस सभा का बड़ा महत्त्व है. यह भटके हुए लोगों का राह खोजने का प्रयास है। यह अच्छा है।

12.6 पंडितों की पंचायत : सार

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं आचार्य क्षितिमोहन सेन के सानिध्य के अतिरिक्त महान चित्रकार नंदलाल वसु, सी.एफ. एण्ड्रुज़, विनोदबिहारी मुखर्जी, प्रो.विंटरनित्स, पं विधुशेखर शास्त्री तथा वेणी माधव वाड़ुवा आदि महापंडितों का समागम प्राप्त किया इसी के चलते आचार्य द्विवेदी के सृजनात्मक शास्त्रीय पाण्डित्य ने बहुसांस्कृतिक स्तर की रचना-दृष्टि प्राप्त की। आचार्य द्विवेदी की यही दृष्टि उनके निबंधों खासकर ललित निबंधों की केन्द्रीय रेखा के रूप में कार्यशील है। ललित निबंधों के रूप में आचार्य द्विवेदी में अपने समाज, संस्कृति, सभ्यता, कला और जीवन के संबंध में कालातीत साहित्य की उद्भावना की है। 'पंडितों की पंचायत' भी इसी श्रेणी का ललित निबंध है। इस निबंध का उद्देश्य एक तरफ जहाँ सहस्रों वर्षों से अर्जित सूक्ष्मतम ज्योतिष विद्या का विकासमान पक्ष उजागर करना है वहीं दूसरी तरफ शास्त्र के समानांतर चलने वाली सृजनबद्ध, सहज लोक-दृष्टि का रेखाकंन एवं महत्त्व प्रतिपादन भी है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का लिखा यह निबंध अपनी सृजनात्मकता, सहजता, पाण्डित्य और सांस्कृतिक-सम्पन्न दृष्टि के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हालाकि 'पंडितों की पंचायत' नामक यह निबंध अपनी विषय वस्तु, संवाद-शैली, भाषा-प्रक्रिया, उद्देश्य एवं सांस्कृतिक अवधारणा के आधार पर अपनी तरह का अकेला निबंध नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अन्य कई निबंध अपनी आंतरिक रचनाप्रक्रिया और बाह्य रूपाकार के आधार पर समानशील हैं। इस बात को पुष्ट करने के लिए 'ठाकुर जी की बटोर', 'अशोक के फूल', 'भारतीय मेले', 'घनपति से घनश्याम तक' आदि अन्य कई निबंधों का उदाहरण दिया जा सकता है। सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को महाकाल की अवधारणा के साथ जोड़कर मानव सत्य की सर्वप्रमुखता एवं मानवीय संवेदनों की व्याख्या करना आचार्य द्विवेदी के साहित्य का केन्द्रीय बिन्दु है।

'पंडितों की पंचायत' निबंध का स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के भीतर से प्रसरित मानव-सत्य की जिजीविषा पर आधारित है।

अपने गाँव की एक छोटी सी घटना समस्या के बहाने पं. द्विवेदी सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में व्याप्त ज्योतिष विद्या के विकासमान एवं शास्त्रीय स्वरूप की समीक्षा के भीरत वे शास्त्र और लोक के द्वन्द्व को केन्द्रीय बिन्दु के रूप में स्थापित करते हुए शास्त्रीय चिंता के परिप्रेक्ष्य में विकासशील लौकिक ज्ञान को प्रमुखता देते हैं। संस्कृत के पण्डित होते हुए भी आचार्य द्विवेदी लोक ज्ञान की महत्ता को जानते हैं और पंडितों की जड़ पंचायत में बैठे-बैठे सम्पूर्ण मानवीय विकास-चेतना के लिए सूत्र-रत्नों का निर्माण करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

आचार्य द्विवेदी प्रस्तुत निबंध में भी लोक चिंता से परिचालित दिखाई देते हैं। वे अपने अन्य निबंधों की ही तरह इस निबंध में शास्त्र को लोक का अनुगामी मानने की बात करते हैं। जैसा कि आप ने निबंध में पढ़ा -

" यह जो एकादशी व्रत का निर्णय मेरे सामने हो रहा है, जिसमें बीसियों आचार्यों के सैकड़ों श्लोक उद्धृत किए जा रहे हैं, अपने आप में ऐसा क्या महत्व रखता है जिसके लिए एक दिन सैकड़ों पंडितों ने परिश्रमपूर्वक सैकड़ों निबंध रचे थे और आज आसेतु हिमाचल समस्त भारतवर्ष के पंडित उनकी सहायता से व्रत का निर्णय कर रहे हैं। क्या श्रद्धापूर्वक किसी एक दिन उपवास कर लेना पर्याप्त नहीं था! यदि एकादशी किसी दिन 55 दण्ड से ऊपर हो गई, या किसी दिन उदय काल में न आ सकी, या किसी दिन उदय काल में आ गई तो क्या बन या बिगड़ गया ? किसी भी एक दिन व्रत कर लेना पर्याप्त नहीं है ? मुझे 'ननु' 'तथा च' और 'उक्त च' की धुआँधार वर्षा से मध्य युग का आकाश इतना आविल जान पड़ा कि बीसवीं शताब्दी का ज्ञान लोक अनेक चेष्टाओं के बाद भी निबंधकारों की असली समस्या तक नहीं पहुँच सका। मैंने फिर एक बार सोचा, शास्त्रीय वचनों के इन विशाल पर्वतों को खोदकर यह चुहिया क्यों निकाली जा रही है। "

आचार्य द्विवेदी मानवीय चेतना को सहज और विकासशील मानते हैं । परम्परा का पाठ - पूर्व एवं उत्तर पक्ष के आधार पर करते हुए वे दोनों ही पक्षों को समान भाव से सम्मान की दृष्टि से देखने की पक्षपाती हैं परन्तु शर्त यह है कि मानवीय-सत्य, मानवीय मूल्यों का संवर्धन एवं संरक्षण होता रहे। आचार्य द्विवेदी का सम्पूर्ण साहित्य मानवीय मूल्यों, मानवीय-सत्य, मानवता एवं सम्पूर्ण भारतीय चेतनाधारा पर अखण्ड विश्वास एवं श्रद्धा का साहित्य है। आचार्य द्विवेदी निबंध का अंत करते हुए लिखते हैं – " लेकिन भारतीय संस्कृति क्या सचमुच ऐसी कमजोर नींव पर खड़ी है, कोई एक एक्ट, कोई एक कानून और कोई एक विचार-विनिमय उसे हिला दे ? मैं समझता हूँ, नहीं। मेरे सामने छ: हजार वर्षों की और सहस्त्रों योजन विस्तृत देश की विशाल संस्कृति खड़ी है, उसके इस वृद्ध शरीर में जरा भी बुढ़ापा नहीं है, वह किसी चिरनवीन प्रेरणा से परिचालित है। उसके मस्तिष्क में सहस्त्रों वर्ष का अनुभव है; लेकिन थकान नहीं है, उसकी आँखों में अनादि तेज झलक रहा है, पर आलस्य नहीं है! वह अपूर्व शक्ति और अनंत धैर्य को अपने वक्ष-स्थल में वहन करती आ रही है। उसने अपने विराट परिवर्तनशील दीर्घ जीवन में क्या -क्या नहीं देखा है ? कुछ और देख लेने में उसे कुछ भी झिझक नहीं, कुछ भी हिचक नहीं है। जो लोग इस तेजोमय मूर्ति को नहीं देख सकते वही घबराते हैं, मैं नहीं घबरा सकता। शास्त्र चर्चा अब भी चल रही थी। मैं सोचने लगा क्या यह जरूरी नहीं है कि सभी पंचांगवाले एकमत होकर एक ही तरह का निर्णय करें। शायद नहीं। क्यों कि हमारा देश एक विचित्र परिस्थिति में से गुजर रहा है। वह पुराना रास्ता छोड़ने को बाध्य है, किन्तु नया रास्ता अभी मिला नहीं। वह कुछ पुराने के मोह में और कुछ नए के नशे में भूल रहा है। चलने दो, इन भिन्न-भिन्न मतों को, इन भिन्न–भिन्न पक्षों को, भारतीय जनमत स्वयमेव इनमें से अच्छे को चुन लेगा। इस दृष्टि से इस सभा का बड़ा महत्त्व है. यह भटके हुए लोगों का राह खोजने का प्रयास है। यह अच्छा है। "

अभ्यास प्रश्न

अभ्यास प्रश्न क - अतिलघु प्रश्न

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म कब और कहाँ हुआ।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी के पिता का नाम क्या था।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी के चार उपन्यासों के नाम बताइये।
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी की मृत्यु कब हुई ?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी का संक्षिप्त जीवन वृत्त लिखिए।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय लिखिए।

अभ्यास प्रश्न (ख) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ’पंडितों की पंचायत‘ निबंध किस पुस्तक में संकलित है।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निबंध की कितनी कोटियाँ मानी है ?
3. आचार्य वराहमिहिर की रचना का नाम बताइये।
4. 'पंडितों की पंचायत' किस कोटी का निबंध है।

12.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने -

- ❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यक्तिगत एवं साहित्यिक जीवन एवं उसके क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त किया होगा
- ❖ ‘पंडितों की पंचायत’ निबंध का परिचय एवं उसके पाठ द्वारा ललित निबंध का आस्वाद प्राप्त किया होगा।
- ❖ लोक तथा शास्त्र के चिरपरिचित द्वन्द्व के भारतीय जनमानस पर पढ़ने वाले स्वरूप एवं प्रभाव को समझा होगा।
- ❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्त्व का ज्ञान प्राप्त किया होगा।

12.8 शब्दावली

1. तिलमिलाकर - गुस्से में,
2. अनुसंधान - खोज, ढूढ़ना
3. शतच्छिद्र - कई सौ छेदों वाला
4. विध्वस्त - टूटना, खण्डित
5. आत्मनिष्ठ - अपने आप में लगा हुआ
6. व्यैक्तिक - व्यक्ति संबंधी
7. आत्मभिव्यक्ति - अपने आप को प्रकट करना

8. परिहार - खत्म, समाप्त

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न (क) के उत्तर

1. 19 अगस्त, 1907, बलिया (उ.प्र.) में हुआ
2. पं0 अनमोल द्विवेदी
3. बाणभट्ट की आत्मकथा, चारूचन्द्रलेख, अनामदास का पोथा, पुनर्नवा
4. 19 मई 1979, दिल्ली

अभ्यास प्रश्न (ख) के उत्तर

1. कल्पलता (1951)
2. 1. वार्तालाप मूलक 2. व्याख्यान मूलक 3. अनियंत्रित गप्प-मूलक 4. स्वगत-चिन्तन मूलक 5. कलह-मूलक
3. वृहत् संहिता
4. ललित निबंध

12.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- ❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा. राजमल बोरा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
- ❖ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, व्यक्ति और साहित्य, गणपति चंद्र, गुप्त, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़
- ❖ हजारी प्रसाद द्विवेदी: चिंतन और व्यक्तित्व , (सं) कृपाशंकर चौबे, कलकत्ता
- ❖ साहित्य सहचर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी
- ❖ दूसरी परम्परा की खोज, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- ❖ व्योमकेश दरवेश, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व पर विस्तार से एक निबंध लिखिए।
2. 'पंडितों की पंचायत' निबंध का समीक्षात्मक विवेचन करते हुए आचार्य द्विवेदी की प्रासंगिकता एवं महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई 13 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल: व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व
13.4 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : पाठ
13.5 निर्गुण संत मत और डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम से सम्बद्ध है। इस से पूर्व आपने हिंदी साहित्येतिहास के निबंध साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप उत्तराखण्ड के बहुप्रतिष्ठित विद्वान एवं निर्गुण साहित्य के मर्मज्ञ डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल द्वारा लिखित 'उत्तराखण्ड में संतमत तथा संत साहित्य' का अध्ययन करेंगे। यह इकाई मात्र विद्यार्थियों के अध्ययन एवं ज्ञानार्जन के लिए है इस से परीक्षा में व्याख्या हेतु प्रश्न नहीं पूछे जायेंगे ।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- डा. पीताम्बर बड़थ्वाल के जीवन एवं साहित्य से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास के अन्तर्गत निर्गुण सम्प्रदाय की स्थिति तथा उत्तराखंड की भूमि में प्रसारित संत मत विशेषतः निर्गुण संत मत एवं साहित्य के संबंध में ज्ञान लाभ कर सकेंगे ।

13.3 डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल: व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व

पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का जन्म शुक्रवार 24 मार्गशीर्ष सं0 1958 (13 दिसम्बर, 1901) को गढ़वाल में लैंसडाउन के पास पाली नामक एक छोटे से गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. गौरीदत्त बड़थ्वाल था। वे अच्छे ज्योतिषी तथा कर्मकाण्डी विद्वान थे। बालक पीताम्बर का पालन उनके ताऊ पं. मणिराम बड़थ्वाल ने किया, जिनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी। वैसे भी जब बालक पीताम्बर केवल दस वर्ष के थे तो उनके पिता पं. गौरीदत्त जी का देहावसान हो गया था।

आरम्भ में घर पर रहकर ही उन्होंने संस्कृत की पढ़ाई अमरकोष के अध्ययन से आरम्भ की। कुछ समय समीपस्थ विद्यालय में अध्ययन करने के बाद वे श्रीनगर (गढ़वाल) गवर्नमेंट हाई स्कूल में अध्ययन करने चले गए, परन्तु वहां उपयुक्त में कालीचरण हाई स्कूल में प्रवेश लिया, जहां उस समय हेडमास्टर के पद पर हिंदी के दिग्गज बाबू श्यामसुन्दरदास काम कर रहे थे। बाबू श्यामसुन्दरदास अपने विद्यार्थी पीताम्बर दत्त से अत्यधिक प्रभावित हुए और यह परिचय घनिष्ठ होकर बाद में साहित्यिक सहयोग में परिवर्तित हो गया। 1920 में हाई स्कूल सम्मान सहित पास कर, वे एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में बी.ए. करने के लिए नाम लिखा लिया था, परन्तु बीमार पड़ने के कारण पढ़ाई न कर सके। लगभग दो वर्ष तक बीमारी की हालत में गांव में रहे। इसी दौरान इनके ताऊ का भी देहान्त हो गया। 1924 में उन्होंने बनारस जाकर इन्हीं दिनों बनारस पुन: पढ़ाई आरम्भ किया। सन् 1926 में बी0ए0 की परीक्षा पास की। सौभाग्यवश इन्हीं दिनों बनारस विश्वविद्यालय में एम0ए0 परीक्षा में प्रथम श्रेणी स्थान प्राप्त किया। उन्हें हिंदी विभाग में शोध कार्य पर नियुक्त किया गया। वे

अपना शोध कार्य बड़े मनोयोग से करने लगे और इसी दौरान 1926 में उन्होंने एल.एल.बी. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली . 1930 में वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में लेक्चरार नियुक्त किए गए।

अध्यापन कार्य के बाद उन्हें जो भी समय मिलता था उसे वे शोधकर्ता में लगाते थे। उनकी अध्ययनशीलता को देखकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें अपने खोज विभाग का अवैतनिक संचालक नियुक्त किया, साथ-साथ वे स्वयं डाक्टरेट की तैयारी में लगे रहे। दो-तीन वर्ष परिश्रम करने के बाद उन्होंने अपना शोध निबंध 'दि निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोयट्री' प्रस्तुत किया।

अपनी साहित्य साधना में वे निरन्तर लगे रहे। जिसके परिणामस्वरूप वे विद्वानों में गिने जाने गले और जगह-जगह महत्वपूर्ण सम्मेलनों में बड़े आदर से बुलाए जाने लगे। यह सब होते हुए भी बनारस में इन्हें असिस्टेंट प्रोफेसर का वेतनमान नहीं दिया गया। महामना मालवीय जी आदि ने हिंदी अध्यापकों को अन्य विषयों के अध्यापकों के समकक्ष वेतन देने से इन्कार कर दिया। डॉ.बड़थ्वाल ने वाइस-चांसलर को सम्बोधित कर अपने 6 मार्च 1938 के अभ्यावेदन में स्पष्ट रूप से लिखा था कि ''अन्य विषयों के डी. लिट्. के समकक्ष मुझे वेतन ने दिए जाने कारण एक ही दिखाई देता है और वह है मेरा हिंदी का स्नातक होना।'' इसके बाद वे लखनऊ चले गए, वहां हिंदी विभाग के प्राध्यापक के रूप में काम करने लगे। परन्तु चाहे जो भी कारण रहा हो लखनऊ का वातावरण उन्हें माफिक नहीं रहा और धीरे-धीरे उनकी शारीरिक तथा मानसिक अस्वस्थता बढ़ती गई। जब काम करना असम्भव हो गया तो अपने गांव आकर रहने लगे जहां सोमवार 24 जुलाई, 1944 (सं0 2001 के श्रावण मास की शुक्ल चतुर्थी) को उनका देहावसान हो गया।

डॉ. बड़थ्वाल का जीवन संघर्ष का जीवन रहा। एक ओर पारिवारिक चिन्ताएँ, दूसरी ओर अर्थाभाव उन्हें घेरे रहा। फिर भी वे निरन्तर हिंदी की सेवा करते रहे।" (सच्चिदानंद कबटियाल)

13.4 उत्तराखण्ड में संतमत और संत साहित्य : पाठ

सन्त विचार-परम्परा का गढ़वाल से विशेष संबंध है। संत मत मूल्त: निवृत्ति मार्ग है। उसके सर्वप्रथम आचार्य सनत्कुमार थे छांदोग्य के अनुसार इस संतमत अथवा अध्यात्म-विद्या को सनत्कुमार से नारद से सीखा। इन्हीं नारद की प्रचार की हुई भक्ति में कबीर आदि संतों ने भी डुबकी लगायी। सनत्कुमार ने नारद की वृत्ति को धीरे-धीरे अन्तर्मुख किया। वेद, अन्न, स्मृति, आशा, प्राण, सत्य, मति, श्रद्धा, भूमा आदि के मार्ग से ले जाते हुए वे नारद को वास्त्वविक आत्मानुभूति की अवस्था तक पहुँचा देते हैं। महाभारत के नारदोपाख्यान के अनुसार नारद की अध्यात्म मार्ग को सीखने के लिए ऐकांतिकों के पास श्वेतद्वीप गये थे। श्वेतद्वीप सूमेरू से उत्तर दिशा में क्षीरसागर के उत्तर तट पर एक द्वीप था। थियासफी के योगविदों के अनुसार यह स्थान चीन के गोबी नामक विस्तीर्ण मरू में-जहाँ पहले क्षीरसागर रहा होगा, अब भी विद्यमान है और

इस सृष्टिकाल के सबसे बड़े आचार्य सनत्कुमार अब भी वहाँ रहते हैं। पंडित नरदेव शास्त्री तो हिमगिरि को ही श्वेतद्वीप मानते हैं और गढ़वाल को सनत्कुमार का स्थान।महाभारत के अनुसार जिन लोगों से अध्यात्म-विद्या सीखने के लिए नारद श्वेतद्वीप गये थे वे 'नारायण पर' थे और उसमें संदेह नहीं कि समेरू के निकट नारायणीय धर्म के संबंध रखने वाला सबसे प्रसिद्व स्थान बदरिकाश्रम है जिसका महाभारत-काल में भी आजकल ही के समान अत्यन्त आदर था।

बदरीनाथ बदरीनारायण हैं। बदरिकाश्रम नारायणाश्रम है और नारायण के अवतार व्यासजी का भी मूल आश्रय वही है। वहीं उन्होंने अध्यात्मविद्याके आधार ग्रथ ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया था। वस्तुत: उत्तराखंउ का यह प्रदेश सच्ची तपोभूमि है। प्राचीन काल में तपस्या के द्वारा यहीं बड़े-बड़े तपस्वियों को ज्ञान प्राप्त हुआ। अष्टावक्र ऋषि यहीं विदेहावस्था को प्राप्त हुए। व्यासाश्रम (व्यासगुफा), वसिष्ठाश्रम (हिंदाव) परशुरामाश्रम, बालखिल्याश्रम इस बात का प्रचुर साक्ष्य देते हैं कि यह प्राचीन ऋषियों की तपोभूमि है।

मध्य-युग के सबसे बड़े महात्मा गोरखनाथ ने भी यहीं अपनी सिद्धि प्राप्त की। "रख्वाली" (शरीर-रक्षा के) मंत्रों से पता चलता है कि उन्होंने अपनी घोर तपस्या 'धौलया उढ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में की थी। यह स्थान दक्षिण गढ़वाल में अत्यन्त निर्जन और बीहड़ स्थान में है। यहींवीर राजा काली हरपाल को उसकी माता ने बाल्यावस्था में बड़ी कठिनाइयों का यामना करते हुए पाला था। इस सथान का इस प्रकार गढ़वाल के इतिहास में ही नहीं संतों के इतिहास में भी बड़ा महत्व है। स्वयं गोरखनाथ ने तप के क्षेत्र में उत्तराखण्ड का बड़ा महत्व माना है।

दक्षिणी जोगी रंगा चंगा, पुरबी जोगी वादी।
पछिमी जोगी बाला भोला, सिंध जोगी उतराधी।।

गढ़वाल के मंत्र-साहित्य में गुरू गोरखनाथ का बड़ा प्राधान्य रहा है। जान पड़ता है कि किसी समय में नाथों का भी यहाँ बड़ा प्राधान्य था। अभी भी गढ़वालमें गोरखपंथी नाथ बहुत हैं। ओले, अति वर्षण आदि ईतियों के निवारण के लिए जिन डलियों को 'डाडवार' (वार्षिक वृत्ति) प्रत्येक गढ़वालीघर से मिलता है, वे नाथ ही हैं। दक्षिण गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं।श्रीनगर में भी नाथों को एक अलग मुहल्ला है। गढ़वाल में बहुत नाथ रहते हैं। गढ़वाल में गोरखपंथियों का सबसे बड़ा स्थान देवलगढ़ के सत्यनाथ का मंदिर है। मूलत: देवलगढ़ देवी का पवित्र स्थान है। त्रिगर्त(काँगड़ा) के देवल नाम के एक प्राचीन राजा ने इस स्थान पर गौरा देवीका मंदिर स्थापित किया था ऐसा परंपरागत प्रवाद है देवल राजा ही के नाम से इस स्थान का नाम देवलगढ़ पड़ा है। देवी का यह मंदिर अब तक देवलगढ़ में विद्यमान है और गोरजा देवीके मंदिर के नाम से प्रख्यात है। गढ़वाल के पँवार राज्यवंश का स्थापित किया हुआ राज-राजेश्वरी का मंदिर भी यहाँ है, परन्तु संतमत की दृष्टि से सत्यनाथ का मंदिर बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके पीछेएक ऐतिहासिक परंपरा है जो एक बड़े ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत करती है। कहा जाता है कि राजा अजयपाल को भैरवनाथ ने सत्यनाथ ने सत्यनाथ योगी के रूप में यहीं दर्शन दिये और उन्हें कंधे पर चढ़ा कर अपना आकार बढ़ते हुए कहा कि जहां तक तुम्हारी दृष्टिजाती है, वहां तक तुम्हारा

राज्य फैल गया और उसनेसत्यनाथ से प्रार्थनाकी कि अब अपना आकार न बढ़ाइए। राजा की दृष्टि हिमालय से लेकर शिवालिक (सपाद लक्ष) पर्वत-श्रेणीतक पहुँची और वहाँ तक उसका राज्य फैल गया।

किसी समय उत्तर-भारत में नाथों का खूब बोलबाला रहा है। वे केवल निरीह साधु ही नहीं रहे हैं नवीन राज्यों की स्थापना करने वाले और राज्य-शक्ति का परिचालन करने वाले भी रहे हैं। इसमें तो संदेह नहीं कि गोरखा राजा का नाम गोरखनाथ के नाम से पड़ा है। गोरखा राजा अपने आपको केबल दीवान मानते हैं, गद्दी का वास्वविक स्वामी तो गोरखनाथ माना जाता है। जान पड़ता है कि शिशोदियों की जो शाखा 94वीं शताब्दी के लगभग गोरख और पीछे नेपाल राज्य में अधिष्ठित हुई, उसको वहां लाने के कारण गोरखनाथ ही थे। जोधपुर में 97वीं 98वीं शताब्दी के नाथ लोगों के ही हाथामें प्राय:सारेराज्य की बागडोर रही है। गढ़वाल में पँवार-वंश को गहरी नींव देने में भी जान पड़ता है कि नाथों का कुछ साहाय्य रहा है, यह ऊपर के परंपरागत जनवाद से स्पष्ट है और कई प्रकार से इसकी पुष्टि होती है। गढ़वाल के गाँव-गाँव में सिद्वों के स्थानों का होना इस बात का सूचक है कि गोरक्ष आदि सिद्वों को यहाँ बड़ा माना था। सिद्वों ने गढ़वाल में ग्राम-देवताओं का स्थान ग्रहण कर लिया है और भैरव तथा देवी के साथ-साथ उनकी भी पूजा होती है। बल्कि भैरव और देवी की तो कभी-कभी याद आती है, सिद्धि का स्परण पद-पद पर किया जाता है। गढ़वाल में मंत्र-साहित्य में गोरखनाथ, सत्यनाथ, मछिंद्रनाथ, गरीबनाथ, कबीरनाथ, आदि सिद्वों की आणें पड़ती है।

जान पड़ता है कि देवलगढ़ में सत्यनाथ के मन्दिर की स्थापना संवत् 1683 में आषाढ़18 गते को हुई। उससे पहले वह केवल गुफा मात्र रही होगी। मन्दिर रूप में बन जाने पर पहले पीर हंसनाथ जी थे जिनका नाम मंदिर में संवत् के साथ लिखा हुआ है। किसी प्रभावशाली व्यक्ति प्रभातनाथ ने सम्भवत: उसी समय एक बड़ा भारी भंडारा भी किया था। उसका भी उल्लेख शिलालेख में है। यह भी सम्भव है कि मन्दिर की स्थापना हंसनाथजी ने बहुत प्राचीन काल में की हो और प्रभातनाथजी ने संवत् 1683 में मन्दिर की केवल मरम्मत और भंडारा किया हो। स्वर्गीय वजीर पं. हरीकृष्णजी रतूड़ी का मत है कि राजा अजयपाल ने राज-राजेश्वरी और सत्यनाथ दोनों मन्दिरों की स्थापना संवत् 1512 के लगभग की राजधानी चाँदपुर से हटा कर देवलगढ़ में स्थापित हुई।यह अजयपाल राजा वही हैं जिन्होंने गढ़वाल में बहुत कुछ शांति स्थापित की। इनके समय का चला हुआ देवलिया पाथा (पात्र भर कर अन्न नापने का एक परिणाम द्यूल्या पाथो ‘देवलीय प्रस्थ’) अब तक गढ़वाल में प्रचलित है। इसके प्रचार संबंधी शिलालेख भी अब तक देवलगकढ़ में विद्यमान हैं।

जान पड़ता है कि नाथों का जो मान अजयपाल ने किया उसके कारण स्वयं वे भी महात्माओं की श्रेणी में आ गये हैं। नाथों या सिद्वों में केवल अजयपाल अजयपाल भरथरी और गोपीचन्द ही ऐसे हैं जिनके नाम से आगे नाथ या पाव (‘पाद’-‘पा’ भी यही है) नहीं आये हैं इससे पता चलता है कि गोपीचन्द और भरथरी के समान सिद्व अजयपाल भी राजा था। कबीर का संत-मत से धनिष्ठ संबंध है। वह भी गढ़वाल में सिद्व मानाजाता है। कहीं-कहीं पर उसको

कबीरनाथ भी कहा है। गढ़वाल में कबीर के मत का भी प्रचार हुआ था। गढ़वाल के डोम जो निंकार (निराकर) को पूजा चढ़ाया करते हैं, वस्तुत: कबीर के ही अनुयायी हैं। निरंकार की पूजा में कबीर की 'जागर' लगती है। यद्यपि कबीर अहिंसावादी थे फिर भी डोम निरंकार की पूजामें बड़ी निर्दयता से सुअरों का बलिदान करते हैं। किन्तु इस बलिदान को भी उन्होंने विलक्षण रूप से कबीर के साथ जोड़ दिया है।

जागर के अनुसार कबीर ने निरंकार को एक टोकरी अन्न और दो नारियल अग्याल (मनौती की अग्रिम भेंट) के रूप में चढ़ाये थे। कबीर जब कहीं बाहर गये हुए थे तब निरंकर स्वयं एक लंगड़े मँगता के वेश में कबीर के घर आया और उसकी स्त्री से भीख माँगने लगा। कबीर की स्त्री ने कहा कि घर में निरंकरकी अग्याल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मँगता ने उसी में से अपने छोटे खप्पर को भरकर भीख मिल जाने का आग्रह किया। कबीर की स्त्री यह आग्रह न टाल सकी। किंतु मँगता का खप्पर तब जाकर भरा जब सारी अग्याल उसमें डाल दी गयी। कबीर की स्त्री अपने किए पर पछताती हुई खाली पात्र रखने के लिए भीतर गयी तो उसने सारा कमरा अन्न से भरा हुआ पाया। अब उसे सूझा कि हो न हो यह भिखमंगा स्वयं निरंकार ही था। परन्तु इससे पहले कि वह बाहर निकल कर उसके चरणों पर पड़े और अनुनय-विनय करे वह लंगड़ाता हुआ भाग खड़ा हुआ। भागने में उसके खप्पर में से दोनों नारियल एक मैले स्थान पर गिर गये और सुअर के रूप में परिवर्तित हो गये। तब से निरंकार के लिए सुअरों की बलि दी जाती है। एक प्रकार से सुअर सुअर नहीं, नारियल हैं और उनको चढ़ाने से अहिंसा का विरोध नहीं होता।

मैं तो समझता हूं कि मुसलमान कुल में पैदा हुए गुरू के चेलों को जब लोग मुसलमान ही गिनने लगे तब उनमें से कुछ को अपना मुसलमान न होना सिद्व करने के लिए शूकर-वध का यह उपाय काम में लाना पड़ा। यह कहा जा चुका है कि व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र की रचना बदरिकाश्रम में ही की थी। हिन्दी का भी थोड़ा-सा आध्यात्मिक साहित्य गढ़वाल में लिखा हुआ मिलता है।

मोलाराम का नाम चित्रकारी के लिए प्रसिद्व है। उसने चित्रकारी के साथ-साथ कविता भी की थी। मोलाराम ने नाना विषयों पर लिखा है। मोलाराम ने जो कुछ लिखा है उसका काव्य की दृष्टि से से विशेष महत्व नहीं परन्तु अन्य दृष्टियों से उसका बहुत महत्व है। गढ़वाल के तत्कालीन इतिहास पर उनकी कविताओं से अच्छी तरह प्रकाश पड़ाता है। थोड़ा बहुत अध्यात्म विद्या पर भी उन्होंने लिखा है। साधना पंथ के मनोविज्ञान की दृष्टि से इन कविताओं का बड़ा महत्व है।

कुछ मनस्तत्ववेत्ताओं का मत है कि मनुष्य के सब भावों का मूल्य प्रेरक श्रृंगार ही है। यही एक भाव नाना रूप धारण कर मनुष्य के विविध क्रिया-कलापों में प्रकट होता है। जान पड़ता है कि मोलाराम के विषय में गढ़वाल में भी एक साधना-पंथ ऐसा था जिसके आचार्यो को इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का ज्ञान था और उसी पर उन्होंनेइस पंथ की नींवडाली थी। इस पंथ का नाम मोलाराम के अनुसार मनमथ-पंथ था। यह पंथ का नाम मोलाराम के अनुसार आदि शक्ति

ही सर्वोपरि और सृष्टि का मूल है। अकल रूप में वह सदाशिव है, निर्गुण है। सकल या सगुण रूप धारण कर वही सृष्टि रचती है।

आदि शक्ति रचना जब रची या विश्व माहिं
मन मथि कै ध्यान धर् यो मनमथ हुलासा है।
मनमथ, सौ इच्छा भई भेग और विलास हूँ की
ताके हेत ब्रह्म हरि रूद्र कौं प्रकासा है।।

इस प्रकार मोलाराम के अनुसार आध्यात्मिक साधना धर्मनीति, समाजनीति, राजनीति, साहित्य, संगीत, कला, वाणिज्य-व्यवसाय सब क्षेत्रों में एक ही मूल प्रवृत्ति नाना रूपों में काम करती है। मनमथ, कामदेव आदि शब्दों के व्यवहार से यह नहीं समझना चाहिए कि जिस पंथ का वर्णन मोलाराम ने किया है, वह व्यभिचार फैलाने वाला पंथ है। मोलाराम ने स्पष्ट शब्दों में कुमार्ग का त्याग दया दाक्षिण्य मुक्त गृहस्थ धर्म को पालना, मन को साधना और अंतर्मुख जीवन बिताना आवश्यक बतलाया है।

है तुहू अन्दर बैठ निरंतर लेख्यो लिलाट कही नहीं जावैं।
छाड़ि कुमारग मारग मैं रहौ, धृस्य कौं मूल दया हितरावै।।
साधन तें मन साधले आपनों मोलाराम महा सुष पावै।
है तुहु अन्दर दुइत मन्दर क्यौं जग बन्दर सौं भरमावै।

वस्तुत: इस पंथ ने मनुष्य की वास्तविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है और अपनी साधना को दृढ़ आधारशिला पर रखा है, जिससे साधक धोखे में न पड़े। जैसा 'यत: प्रवृति प्रसृता पुराणी' से पता चलता है। गीता भी मानती है कि फैलाव जितना है प्रवृत्ति का है। इसलिए वही पंथ जो इस प्रवृत्ति को ध्यान में रख कर चलता है, वस्तुत: लाभदायक हो सकता है। अतएव मोलाराम ने जीव से सीव (शिव-ब्रह्म) होने को एक मात्र उपय बताया है। इन मन:शक्ति को उपयुक्त रूप में मंथन कर उसे नाना दिशाओं में दौड़ने से रोक कर एक ही स्थान में लाना यही सारी साधना का सार है, इसी का दूसरा नाम निवृत्ति तथा योग है: मन के साथ जोब-जबर से काम नहीं चलता। उसे बलात एक स्थान पर सिमटाना असंभव है। उसीलिए मन को समझाने का उपदेश है:

काहू सौं बकवाद नहीं हम करैं करावैं।
मनमथ पंथी होय अपनो मन समझावैं।
कहा बाद मैं स्वाद जो हम काहूँ सों बादैं।
जे सज्जन कुलतन्त सं सो मन कौ साधैं।
मोलाराम विचार कही सुनो पंच प्रवीन तुम।
भये भक्त जग माहिं जे सब दासन के दास हम।।

जितने योग के साधन हैं, सबका उद्देश्य मन को समझा-बुझा कर एक ठिकाने पर लाना है। जप, तप, षटचक्र-वेध नादानुसंधान, ज्योति दर्शन सबका मनमथ पंथ में मोलाराम के अनुसार

उचित स्थान है। यहाँ पर इतना स्थान नहीं है कि मोलाराम के इस संबंध के पूरे उद्धरण दें। परन्तु इतना तो स्पष्ट हो गया है कि मोलाराम का यह मनमथ पंथ मनस्तत्व और दर्शन के उच्च सिद्धांतों पर टिका हुआ एक शुद्ध साधना मार्ग है। इसमें प्राचीन परम्परा से आती हुई उन बातों का मोलाराम ने सिद्धांत रूप से संवत् 1850 के लगभग उल्लेख कियाथा जिनको मनस्तत्व के क्षेत्र में बड़े-बड़े विद्वान् समझ रहे है कि हम ही पहले पहल आविष्कार कर रहे हैं। उन्हीं बातों के कारणमोलाराम के अनुसार यह पंथ अमृत का सार है। जो उसे जानते हैं उन्हें ब्रह्मनन्द लाभ होता है।

मनमथ को पथ ऐसो, इमृत को सार जैसो।
जानत हैं सोई संत ब्रह्म को बिलासा है।।

इसी प्रकार स्वामी शशिधर का भी गढ़वाली संत साहित्यकारों में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा हरिमुनि शर्मा इनका बड़ा आदर करते थे। सं.1882 में ये ब्रह्मलीन हुए। इनके रचे हुए 1- दोहों की पुस्तक (दोहावली), 2- ज्ञानदीप, 3-सच्चिदानंद लहरी, और 4- योग-प्रेमावली का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (1912-1994) में मिलता है।

ये बड़ी पहुँच के ज्ञानी थे। जीवन-मुक्त होकर इसी शरीर से वे उस ब्रह्म पर को प्राप्त हो गये थे, जहाँ ब्रह्म की सृष्टि और विष्णु के अवतारों की पहुँच नहीं। रूपक की भाषा में उन्होंने ऐसे शहर में व्यापार करने की बात कही है:

ब्रह्म न रचे जहाँ विष्णु को नहि अवतार।
ऐसो सहर में सदा करै सब बसि बजार।।
एहि जाने सो ताको पंडित, करै मुतबाल बसाइ।
जाने बिना मिले नहीं, मूढ़ करि होत थकाइ।।

सब को वे उस स्थान तक पहुँचने का आदेश देते हैं। ब्रह्मानुभव के आनंद का उन्होंने बड़ा अच्छा वर्णन किया है:

ध्यान भजन तहाँ नहिं पूजा, आपे आप अतीत आवरण दूजा।।
बंधन-मोक्ष तहाँ पूरण आनंद, आपे आप सहज खेले निरबंद।।

-सच्चिदानन्द लहरी

इस पद तक पहुँचने का उन्होंने जो मार्ग बतलायाहै उसमें भी मन की शक्तियों का भली-भाँति ध्यान रखा गया है। उन्होंने कहा है कि ब्रह्म-लीन होने के लिए ब्रह्म-बोध होना आवश्यक है और ब्रह्म-बोध तब तक नहीं हो सकता जब तक मन को बोध विषय की प्रतीति नहीं होती।

मैं क्या कहूँ कहँ यति सति सभ कोई,
सभ सभी गावै जो बुझै सो सभ होई।
प्रतित से बोध होवै बोध से लय लागे मन,
मन के गति मुनि जाने जाके मिलि गये तन। - ज्ञानदीप

मन को बिना कष्ट पहुँचाये सुख से अंतर्मुख करने के लिए उन्होंनेमन के सामने कृष्ण का परम प्रेमालुप्त स्वरूप रखा है:

नमस्ते नन्द कुमार नमस्ते गोपिका बर ।
बोधात्मा साधनी गावै दीन दास शशिधर।।

भगवत्भजन और प्रपत्ति की भी उन्होंने महत्ता गायी है।

काया कर निकर मुख राम भजि
भक्ति मन आत्मा जागला।
येति निज नाम खेवा खियायि
भवाब्धि की बड़ पार लागला।। - योग-प्रमावली

यहां पर साधना के अतिरिक्त 'जागला'और 'लागला'आदि में उनकी भाषा का पहाड़ीपन ध्यान देने योग्य है।

गढ़वाल में संत-साहित्य का मिलना कोई आश्चर्य की बात नहीं। तितिक्षा और वैराग्य का पाठ पढ़ने युग-युगान्तर से साधक लोग इस तपोभूमि में आते रहे हैं। ब्रह्म विद्या का तो इसे घर होना चाहिए। मैंने जो कुछ यहां लिखा है वह तो लेशमात्र है जो मुझे आसानी से प्राप्त हो गया। गढ़वाल ही नहीं समस्त पर्वतीय देशों में अध्यात्म विद्या के ही नहीं किसी प्रकार के साहित्य का भी अभी तक अच्छी तरह से अन्वेषण नहीं हुआ है। उन्मेषशील युवक समाज से आशा की जातीहै कि वह उत्साहपूर्वक इस काम को अपनेहाथ में लेगा। हमारे वयोवृद्व उन्हें साहित्य के कल्याण-मार्ग पर सत्प्रेरणा दें और श्रीमंत उनकी कठिन साधना से प्राप्त सामग्री को प्रकाश में लाने के साधन सुलभ करें जिससे एक परिश्रम का साफल्य उत्तरोत्तर और परिश्रमों तथा प्रयत्नों की प्रेरणा करता रहे।("डा. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबंध " पुस्तक से साभार)

13.5 निर्गुण संत मत और डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिंदी शोध और आलोचना के अग्रदूत रहे है। एक समय जब उच्च कक्षाओं में हिंदी का अध्ययन और अध्यापन नहीं होता था और प्राचीन हिंदी ग्रंथों की पर्याप्त खोज नहीं हुई थी, तब डा. बड़थ्वाल ने पं. रामचंद्र शुक्ल और श्याम सुन्दरदास के साथ हिंदी शोध ओर आलोचना की गहरी नींव डाली। पं. रामचंद्र शुक्ल और बाबू श्याम सुन्दर दास आलोचना के क्षेत्र में व्यस्त रहे जब कि डा. बड़थ्वाल ने शोध का कार्य अपनाया। उन्होंने अपने शोध के लिए संत साहित्य को चुना जो तब अंधकार में पड़ा था और जो साहित्य रूप में विशेष चर्चा का विषय भी न था। उन्होंने पहली बार मूल स्रोत तक पहुँचने की कोशिश की और नई मान्यताएं स्थापित की। कबीर आदि संतों और गोरख, रामानंद आदि पर उन्होंने जो कार्य किया वह आज भी नींव के पत्थर की तरह है। डा. बड़थ्वाल ने अनेक दुष्प्राप्य हस्तलिपियों का संग्रह किया था, जिनके अध्ययन के आधार पर उन्होंने नागार्जुन, चौरंगीनाथ, कणोरिपाव, स्वामी राद्यवानन्द, सिद्धान्त पंचमात्रा निरंजनी धारा, हिंदी कविता में योग प्रभाव, कबीर का

जीवन वृत, कबीर के कुल का निर्णय आदि जटिल विषयों पर लेख लिखे। डा. बड़थ्वाल के सबसे महत्वपूर्ण लेख वे हैं जो हिंदी साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं तथा श्रृंखला को जोड़ने में सहायक होते हैं। डा. बड़थ्वाल ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें गोरखवानी युग प्रवर्तक रामानंद, सूरदास, रामचंद्रिका, सूरदास, योग प्रवाह, मकरंद आदि उल्लेखनीय हैं। किंतु उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'हिंदी काव्य में निर्गुण धारा' है जो डी.लिट्. का पहला-पहला शोध प्रबंध माना जाता है, प्रस्तुत ग्रंथ शोध और आलोचना का एक मानक प्रस्तुत करता है। संतमत पर उनकी खोजों ने आगे के शोधकर्त्ताओं का मार्ग प्रशस्त किया है हमें इस आधारभूत ग्रंथ को प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष है।

" हिंदी-काव्य के इतिहास का पूर्व-रूप हमें पहले-पहल उन काव्य-संग्रहों में दीख पड़ता है जिन्हें समय-समय पर, कुछ व्यक्तियों ने, अपनी रूचि के अनुसार प्रस्तुत किया था और जिनमें, कवियों से अधिक उनकी कृतियों पर ही ध्यान दिया गया था। इसके अनन्तर कविताओं के साथ-साथ उनके रचयिताओं के संक्षिप्त परिचय भी दिये जाने लगे और उक्त प्रकार से संगृहीत रचनायें, क्रमशः केवल उदाहरणों का रूप ग्रहण करने लगी। ऐसे कवियों का नामोल्लेख, उस समय अधिकतर वर्णक्रमानुसार किया जाता था तथा उनके समय व स्थानादि का निर्देश कर दिया जाता था। उनकी कविताओं में उपलब्ध साम्य व उनकी वर्गीकरण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इस दूसरे प्रकार के विवरणों का देना, उस समय से आरम्भ हुआ, जब कुछ प्रतिनिधि कवियों के अनुसार काल-विभाजन की भी प्रथा चल निकली और प्रत्येक वर्ग की चर्चा उसके काल क्रमानुसार की जाने लगी। ऐसा करते समय उन कवियों की विशेषताएं बतलायी जाने लगीं, उनकी पारस्परिक तुलना की जाने लगी और कभी-कभी उनकी रचनाओं का आलोचनात्मक परिचय भी दे दिया जाने लगा। इस प्रकार उक्त कोरे काव्य-संग्रहों का रूप क्रमशः काव्य के इतिहास में परिणत होने लगा और कवियों के साथ-साथ गद्यलेखकों की भी चर्चा आ जाने के कारण इस प्रकार की रचनाएं पूरे हिंदी साहित्य का इतिहास बनकर प्रसिद्ध हो चली। परन्तु नामानुसार किया गया उक्त काल-विभाजन भी आगे चलकर उतना उपयुक्त नहीं समझा गया। कवियों एवं लेखकों की विभिन्न रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते समय अब उनके रचना-काल की परिस्थितियों पर भी कुछ अधिक विचार किया जाने लगा और तात्कालिक समाज के भीतर उनकी भावधारा तथा रचनाशैली की विशेषताओं के कारणों की भी खोज की जाने लगी। तदनुसार एक समान रचनाओं के किसी काल विशेष में ही उपलब्ध होने के कारण क्रमशः उनके रचनाकाल की प्रमुख विचारधाराओं का भी पता लगाना आवश्यक हो गया है और इस प्रकार उक्त काल-विभाजन के आधार में आमूल परिवर्तन कर दिया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' की रचना बहुत कुछ इसी दृष्टिकोण के अनुसार सं. 1986 में की थी और तब से वैसे अन्य इतिहासकार भी अधिकतर इसी नियम का पालन करते आये हैं। वे प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण उनकी विभिन्न धाराओं के अंतर्गत भिन्न-भिन्न कवियों का वर्गीकरण करते हैं और उनका वर्णन करते समय कृतियों की समीक्षा पर भी विशेष ध्यान देते आये हैं। फलतः हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के

अंतर्गत ‘निर्गुणधारा‘ एवं ‘सगुणधारा‘ नाम की दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों की कल्पना की गयी है और ‘निर्गुणधारा‘ को भी ‘ज्ञानाश्रयी‘ तथा ‘प्रेमाश्रयी‘ नामक दो शाखाओं को विभाजित कर, कबीर, नानक आदि कवियों का परिचय ‘ज्ञानाश्रयी शाखा‘ के अंतर्गत किया जाने लगा है।

कबीर, नानक, रैदास, दादू जैसे संतों के नामों से लोग बहुत दिनों से परिचित थे और उनकी विविध बानियों का प्रचार भी अनेक वर्षों से बढ़ता ही चला जा रहा था। स्वयं उन संतों ने अपने पूर्ववर्ती संतों के नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिये थे और बहुधा उन्हें सफल साधकों व भक्तों की श्रेणी में गिनते हुए उनका स्मरण किया था। इसी प्रकार भक्तमालों के रचयिताओं ने भी अपने पूर्वकालीन संतों के चमत्कारपूर्ण जीवन की झांकियां दिखलाई थी और कभी-कभी उनकी विशेषताओं की ओर लक्ष्य करते हुए उनके महत्व का मूल्यांकन करने की भी चेष्टा की थी। परन्तु, इस प्रकार के वर्णन अधिकतर पौराणिक पद्धति का ही अनुसरण करते आये और इसी कारण इनमें उनके सर्वांगपूर्ण परिचय के उदाहरण नहीं पाये जाते। इसी प्रकार हम उन आलोचनात्मक परिचयों को भी एकॉगी ही कह सकते हैं जो यूरोप तथा भारत के कतिपय विद्वानों-द्वारा विविध धर्मों के इतिहासों में दिये गये मिलते हैं और जिनमें इन संतों की सांप्रदायिक प्रवृत्ति और इनकी सुधार-पद्धति की ओर ही विशेष ध्यान दिया गया है। संतों की कृतियों का अध्ययन उनमें केवल धार्मिक दृष्टिकोध से ही करने का प्रयत्न किया गया है और इनके नामों के आधार पर निकले हुए पंथों का इतिहास भी बतलाया गया है। इस कारण ऐसी पुस्तकों में विशेष कर प्रचलित भेदों और उपासना-पद्धतियों का विस्तृत वर्णन ही पाया जाता है।

उपर्युक्त साहित्यिक अथवा सांप्रदायिक परिचयों में इन संतों का वर्णन सामूहिक रूप में किया गया नहीं दीख पड़ता। पहले प्रकार के ग्रंथों में इन्हें अन्य कवियों की ही भांति पृथक-पृथक परिचित करा कर इनकी रचनाओं के कुछ विवरण दे दिये गये हैं और इसी प्रकार, उक्त धार्मिक इतिहासों में भी इन्हें निरा धार्मिक प्रचारक मानकर इनका वर्णन अलग-अलग कर दिया गय है। संतों को एक वर्ग-विशेष में गिनते हुए उनके सिद्धान्तों तथा साधनाओं का सामूहिक परिचय देने अथवा उनकी कथनशैली व प्रचार पद्धति पर भी पूर्ण प्रकाश डालने का काम उक्त दोनों में से किसी प्रकार की भी पुस्तकों में किया गया नहीं दीख पड़ता। वास्तव में इन संतों के विषय में सर्व साधारण की धारणा पहले यही रहती आई थी कि ये लोग केवल साधारण श्रेणी के भक्तमात्र थे, इन्होंने अपने-अपने समय के धार्मिक आन्दलनों में भाग लेकर अपने-अपने नामों पर नवीन पंथ चलाने की चेष्टा की थी और अपनी विचित्र प्रकार के रहन-सहन एवं अटपटी बानियों के कारण इन्होंने अपने लिए बहुत से अनुयायी भी बना लिए थे। इनकी अन्य भक्तों से भिन्नता, इनके सिद्धान्तों की एकरूपता, इनकी साधनाओं की विलक्षणता अथवा इनकी मुख्य देन के प्रति किसी ने विचार नहीं किया था।

संतों की इस परंपरा को एक सूत्र में ग्रंथित करने तथा उनके मत का व्यापक रूप निश्चित करने में कई कठिनाइयाँ भी पड़ती थी। केवल दो-एक को छोड़कर इनमें से अन्य संतों का कोई साधारण परिचय भी उपलब्ध नहीं था। इनकी बानियों या तो इनके अनुयायियों के पास हस्तलिखित रूप से सुरक्षित पायी जाती थीं अथवा विकृत होकर यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हुई मिल

जाया करती थी। इसके सिवाय इन संतों के नामों पर चलने वाली विविध पंथों के रूप और प्रचार-पद्धति में भी महान् अन्तर आ गया था। जिस उद्देश्य को लेकर उसका सर्वप्रथम संघटन हुआ उसे, काल पाकर, वे भूल से गये थे और अन्य प्रकार के प्रचलित संप्रदायों के अनुकरण में अधिक लग जाने के कारण, वे क्रमशः साधारण हिंदू समाज में ही विलीन होते जा रहे थे। इन पंथों के अनुयायियों ने अपने प्रवर्त्तकों को दैवी शक्तियों से सम्पन्न मानकर उनकी पौराणिक चरितावली भी बना डाली थी और उनके मौलिक सिद्धान्तों के सच्चे अभिप्राय को समझने की प्रायः कुछ भी चेष्टा न करते हुए उन पर अपने काल्पनिक विचारों को आरोपित कर दिया था। इस कारण वास्तविक रूप जान लेना अथवा उनके महत्त्व का समुचित मूल्यांकन करना कोई सरल काम नहीं था।

उक्त बाधाओं के बने रहने के कारण इन संतों के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों की भी धारणा भ्रांतिपूर्ण हो गयी थी। इनकी बानियों को ऐसे लोग अत्यन्त साधारण नहीं दीख पड़ती थी। संत लोग इनके समक्ष कतिपय निम्नश्रैणी की जातियों में उत्पन्न अशिक्षित व्यक्ति थे जिन्हें प्राचीन धर्मग्रंथों अथवा शास्त्रादि का कुछ भी ज्ञान नहीं था और जिन्हें इसी कारण, सच्चे मार्ग की पहचान तक नहीं हो सकती थी। ये उनके लिए सर्वसाधारण में घूम-फिर कर ऊटपटांग बातों का प्रचार करने वाले निरे साधू व फकीर-श्रेणी के लोग थे और इनके उपदेशों का कोई सुदृढ़ आधार व उद्देश्य भी नहीं था। संतों की बानियों में बिखरे हुए विचारों की संगति वे, किसी पूर्वगत विचारधारा से, लगा पाने में प्रायः असमर्थ रहा करते थे, और इस कारण, उन्हें इनमें कोई व्यवस्था नहीं दीख पड़ती थी और इनकी सार बातें उन्हें किन्हीं अस्पष्ट व क्रमहीन का संग्रहमात्र प्रतीत होती थी। अतएव संतपरम्परा, संतसाहित्य व संतमत की ओर उनका ध्यान पहले एक प्रकार की उपेक्षा का ही रहता चला आया था। इस दिशा में उनका ध्यान सर्वप्रथम उस समय से आकृष्ट होना आरम्भ हुआ जब संतों की बानियों का यत्र-तत्र संग्रह किया जाने लगा और इस प्रकार के ग्रंथ कभी-कभी प्रकाशित भी होने लगे।

विक्रम की बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही वास्तव में संतों और उनकी कृतियों का क्रमशः प्रकाश में आना आरम्भ हुआ। उसके पहले डा. विल्सन के ''ए स्केच ऑफ दि हिंदू सेक्ट्स''सं.1988 में उनके विषय में थोड़ा-बहुत लिखा जा चुका था, गार्सा द तासी ने अपने 'इस्त्वार द ला लितरेत्योर ऐंदुई ए इंदुस्तानी (सं.1896) में कुछ संतों व उनकी रचनाओं की चर्चा की थी और डॉ. ग्रियर्सन ने भी अपने ''मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान सं. 1946 में उनका एक आलोचनात्मक परिचय दिया था जो अधिकतर 'शिवसिंह सरोज' पर आश्रित था। इन लेखकों ने अपने विचार बहुत कुछ अधूरी सामग्रियों के ही आधार पर निश्चित किए थे। उस समय तक न तो स्व. पं. चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी के ''अगबंधू'' व ''स्वामी दादूदयाल की वाणी'', (सं. 1964) स्व. बा. बालेश्वरप्रसाद की 'संतबानी पुस्तक माला' (सं. 1965) व स्व. डा. श्यामसुन्दरदास की 'कबीर ग्रंथावली' जैसे मूल साहित्य को प्रकाशन हो पाया था और न डाक्टर मेकॉलिफ के 'दि सिख रिलीजन सं. 1965 डा. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'वन हण्ड्रेड पोयम्स आफ कबीर'सं. 1980 डॉ. तारादत्त गैरोला के साम आफ दादू सं. 1986 अथवा प्रो.

तेजसिंह के ' दि जपजी जैसे सुन्दर अनुवाद ही निकल पाये थे जिनका अध्ययन कर कोई निर्णय किया जाता। रे. वेस्टकाट ; सं. 1964 डॉ. फर्कुहर ;सं.1977, डॉ. भंडारकर ;सं. 1985, डॉ. कीथ ;सं. 1988 जैसे विद्वानों की धार्मिक इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ रे. प्रेमचन्द ;सं. 1968 व रे. अहमदशाह ;सं. 1972 द्वारा किए गए बीजक के अनुवाद तथा तथा मिश्रबंधुओं का विनोद ;सं0 1969, पं. रामचन्द्र शुक्ल ;सं. 1986 व डॉ. सूर्यकांत शास्त्री ;सं. 1989 साहित्यिक इतिहास भी इसी काल में निर्मित व प्रकाशित हुए और प्राय: इसी समय से इस विषय पर अच्छे-अच्छे निबंध भी लिखे जाने लगे।" (" हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा " पुस्तक से साभार)

13.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- निर्गुण काव्य के मर्मज्ञ विद्वान डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के जीवन एवं उनके साहित्य से परिचित हो चुके होंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास में निर्गुण काव्य एवं सम्प्रदाय के प्रसार एवं महत्त्व को जान चुके होंगे।
- उत्तराखण्ड में व्याप्त निर्गुण सम्प्रदाय एवं संतमत-साहित्य के विषय में परिचयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा।

13.7 शब्दावली

दुष्प्राप्य	-	जो कठिनाई से प्राप्त हो
समकक्ष	-	बराबर
अवैतनिक	-	बिना वेतन के
प्रवाद	-	झूठी बात
मनस्तत्ववेत्ता	-	मनोवैज्ञानिक डाक्टर
अन्वेषण	-	खोज

13.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गोविन्द चातक, डा. पीताम्बर दत्तर बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबंध, तक्षशिला नई दिल्ली
2. डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिंदी काव्य की निर्गुण धारा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
3. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिन्दी -प्रदेश-2 ,किताबघर, नई दिल्ली
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी, प्रचारिणी सभा, बनारस

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के जीवन एवं साहित्य पर विस्तार से एक निबंध लिखिए
2. उत्तराखण्ड में संत मत एवं निर्गुण साहित्य पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए

इकाई 14 अशोक के फूल (आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी) : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 निबंध का पाठ: अशोक के फूल
14.4 निबंध का सार
14.5 संदर्भ सहित व्याख्या
14.6 अंतर्वस्तु
14.6.1 विचार पक्ष
16.6.2 भाव पक्ष
14.7 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
14.8 संरचना शिल्प
14.8.1 भाषा
14.8.2 शैली
14.9 प्रतिपाद्य
14.10 सारांश
14.11 पारिभाषिक शब्दावली
14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.14 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.15 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'अशोक के फूल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। हिन्दी निबंध के विकास में द्विवेदी जी का योगदान महत्त्वपूर्ण है। आपका जन्म 1907 ई. में उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के दुबे का छपरा ग्राम में हुआ था। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य में आपने हिन्दी का अध्यापन कार्य किया। बाद में आपने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा पंजाब विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। द्विवेदी जी ने इतिहास लेखक के रुप में हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया। तत्पश्चात् एक सफल आलोचक, प्रसिद्ध निबंधकार, उपन्यासकार के रुप में आपने लोकप्रियता प्राप्त की।

आ0 द्विवेदी जी के इतिहास व आलोचना संबंधी पुस्तकों में 'सूर साहित्य'(1936), 'हिन्दी साहित्य की भूमिका'(1940), 'कबीर'(1942), 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल'(1952) तथा 'हिन्दी साहित्यः उद्भव व विकास'(1952) प्रमुख हैं। आपके उपन्यासों में 'बाणभट्ट की आत्मकथा'(1946), 'चारुचन्द्रलेख(1963), 'पुनर्नवा'(1973) व 'अनामदास का पोथा'(1976) आदि हैं। द्विवेदी जी के निबंध संग्रहों में 'अशोक के फूल'(1948), 'विचार और वितर्क'(1949), 'कल्पलता'(1951),'विचार प्रवाह'(1959), 'कुटज'(1964) व 'आलोकपर्व'(1972) आदि हैं। आपने ललित निबंध शैली का भी विकास किया। द्विवेदी जी की मानवतावादी दृष्टि, भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा व आस्था, पाण्डित्य, चिंतक एवं प्रखर व्यक्तित्व तथा विनोदी स्वभाव समस्त निबंधों में देखा जा सकता है। आपका निधन 1979 ई. में हुआ।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'अशोक के फूल' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- निबंध की विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे।
- निबंध के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।
- निबंध की अंतर्वस्तु की विशेषताएं बता सकेंगे।
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे।
- भाषा और शैली की दृष्टि से निबंध पर विचार कर सकेंगे।
- निबंध के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे।

14.3 निबंध का पाठ:

भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीयव्यापार हैं। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता थाय परन्तु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और

सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है वह पहले कहा था! उस प्रवेश में नववधू के गृह-प्रवेश की भँाति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है।

फिर एकाएक मुसलमानी सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ-ही-साथ यह मनोहर पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया। नाम तो लोग बाद में भी लेते थे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध, विक्रमादित्य का। अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला वह अपूर्व था। सुन्दरियों के आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदृ आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ-गुना बढ़ा देता था । अशोक किसी कुशल अभिनेता के समान झम्-से रंगमंच पर आता है और दर्शकों को अभिभूत करके खप् से निकल जाता है। क्यों ऐसा हुआ? कन्दर्प देवता के अन्य बाणों की कदर तो आज भी कवियों की दुनिया में ज्यों की त्यों है। अरविन्द को किसने भुलाया, आम कहाँ छोड़ा गया और नीलोत्पल की माया को कौन काट सका? नवमल्लिका की अवश्य ही अब विशेष पूछ नहीं हैय किन्तु उसकी इससे अधिक कदर कभी थी भी नहीं। भुलाया गया अशोक! मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस साधना के पिछले हजारों बरसों पर जाना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी? कन्दर्प देवता ने यदि अशोक को चुना है तो यह निश्चित रूप से एक आर्येत्तर सभ्यता की देन है। इन आर्येत्तर जातियों के उपास्थ वरुण थे, कुबेर थे, वज्रपाणि यक्षपति थे। कन्दर्प यद्यपि कामदेवता का नाम हो गया है, तथापि है वह गन्धर्व का ही पर्याय। शिव से भिड़ने से जाकर एक यह पिट चुके थे, विष्णु से डरते रहते थे और बुद्धदेव से भी टक्कर लेकर लौट आये थे। रवीन्द्रनाथ ने इस भारतवर्ष को ‘महामानवसमुद्र‘ कहा है। विचित्र देश है यह! असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, गंधर्व आये- न जाने कितनी मानव-जातियाँ यहाँ आयीं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गयीं। जिसे हम हिन्दू-रीति-नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का मिश्रण है।
अशोक इन वृक्षों में सर्वाधिक रहस्यमय है। सुन्दरियों के चरण-ताड़न से उसमें दोहद का संचार होता है और परवर्त्ती धर्म-ग्रन्थों से यह भी पता चलता है कि चैत्रशुक्ला अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों के भक्षण से स्त्री की सन्तान-कामना फलवती होती है। ‘अशोक-कल्प‘ में बताया गया है कि अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं-सफेद और लाल। सफेद तो तान्त्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहत होता है और लाल स्मरणवर्धक होता है। यह मुझे प्राचीन युग की बात मालूम होती हैं। आर्यों का लिखा हुआ साहित्य ही हमारे पास बचा है। उसमें सबकुछ आर्य-दृष्टिकोण से ही देखा गया है। आर्यो से अनेक जातियों का संघर्ष हुआ। कुछ ने उनकी अधीनता नहीं मानी, वे कुछ ज्यादा गर्वीली थी। संघर्ष खूब हुआ। पुराणों में इसके प्रमाण हैं। यह इतनी पुरानी बात है कि सभी संघर्षकारी शक्तियाँ बाद में देवयोनि-जात मान ली गयीं। पहला संघर्ष शायद असुरों से हुआ। यह बड़ी गर्वीली जाति थी। आर्यों का प्रभुत्व इसने कभी नहीं माना। फिर दानवों, दैत्यों और राक्षसों से संघर्ष हुआ। गंधर्वों और यक्षों से कोई संघर्ष

नहीं हुआ। वे शायद शान्तिप्रिय जातियाँ थी। अशोक-वृक्ष की पूजा इन्हीं गन्धर्वों और यक्षों की देन है। प्राचीन साहित्य में इस वृक्ष की पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। असल पूजा अशोक की नहीं, बल्कि उसके अधिष्ठाता कन्दर्प देवता की होती थी। इसे मदनोत्सव कहते थे। महाराजा भोज के 'सरस्वती-कण्ठाभरण से जान पड़ता है कि यह उत्सव त्रयोदशी के दिन होता था। 'मालविकाग्निमित्र' और 'रत्नावली' में इस उत्सव का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। मैं जब अशोक के लाल स्तबकों को देखता हूँ तो मुझे वह पुराना वातावरण प्रत्यक्ष दिखायी दे जाता है। कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है, केवल उतना ही याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक से उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है!

अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है उस विशाल सामन्त-सभ्यता का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के संसार कणों को खाकर बड़ी हुई थी। वे सामन्त उखड़ गये, समाज ढह गये, और मदनोत्सव की धूमधाम भी मिट गयी। सन्तान-कामिनियों को गन्धर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान

मिलने लगा-पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली-दुर्गा ने यक्षों ने की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गयी, अशोक पीछे छूट गया।

मुझे मानव-जाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्षों रुप साफ दिखायी दे रहा है। मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती बहाती यह जीवन धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पायी है।

हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रुप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा(जीने की इच्छा)। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है! सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाते हैं।

आज अशोक के पुष्प-स्तबकों को देखकर मेरा मन उदास हो गया है, कल न जाने किस वस्तु को देखकर किस सहृदय के हृदय में उदासी की रेखा खेल उठेगी! जिन बातों को मैं अत्यन्त मूल्यवान समझ रहा हूँ, और जिनके प्रचार के लिए चिल्ला-चिल्लाकर गला सुखा रहा हूँ, उनमें कितने जियेंगी और कितनी बह जायेंगीय कौन जानता! मैं क्या शौक से उदास हुआ हूँ? माया काटे कटती नही। उस युग के साहित्य और शिल्प मन को मसल दे रहे हैं। अशोक के फूल ही नहीं, किसलय भी हृदय को कुरेद रहे हैं।

आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, क्या ऐसी ही बनी रहेगी? सम्राटों-सामन्तों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रुप दिया था, वह लुप्त हो गयीय धर्माचार्यों ने जिस

ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्ध समझा था, वह समाप्त हो गयायमध्य युग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस-राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भाँति उड़ गयी तो क्या यह मध्य-युग के कंकाल में लिखा हुआ व्यावसायिक-युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा? महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी। उसके कुण्ठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ-न-कुछ लपेटकर ले जायेगी। सब बदलेगा, सब विकृत होगा-सब नवीन होगा।

मगर उदास होना भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरम्भ हो जाता-मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता-विज्ञान का संवेग धावन चल निकलता, तो बड़ा बुरा होता। हम पिस जाते। अच्छा ही हुआ जो वह बदल गयी। पूरी कहाँ बदली है? पर बदल तो रही है। अशोक का फूल तो उसी मस्ती से हँस रहा है। पुराने चित्त से इसको देखने वाला उदास होता है। वह अपने को पण्डित समझता है। पण्डिताई भी एक बोझ है- जितनी ही भारी होती है, उतनी ही तेजी से डुबोती है। जबवह जीवन का अंग बन जाती है, तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती।

अभ्यास प्रश्न:

आपने उपर्युक्त निबंध का ध्यानपूर्वक पाठ किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए और उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

अभ्यास प्रश्न1- अशोक का फूल किसके काव्य में गौरव के साथ वर्णित हुआ है?

(क) तुलसीदास
(ख) कालीदास
(ग) माघ
(घ) दण्डी

....
....

अभ्यास प्रश्न2- अशोक वृक्ष की पूजा किसकी देन है? एक पंक्ति में उत्तर दीजिए?

....
....

अभ्यास प्रश्न3- मदनोत्सव किस तिथि को मनाया जाता था?

(क) एकादशी
(ख) द्वादशी

(ग) चर्तुदशी
(घ) त्रयोदशी

....
....

अभ्यास प्रश्न4- अशोक वृक्ष के महत्त्व में क्यों कमी आई? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए?

....
....

....
....

अभ्यास प्रश्न5- किसकी जीवनी शक्ति बड़ी निर्मम है? एक पंक्ति में उत्तर दीजिए?

....
....

14.4 निबंध का सार

यह एक ललित निबंध है। भारतीय साहित्य और समाज में अशोक पुष्प किस प्रकार आया, इस पर विचार करते हुए कहा गया कि ऐसा तो कोई नहीं कह सकता कि कालिदास के पूर्व भारत में इस पुष्प को कोई नहीं जानता था। यह पुष्प कालिदास के काव्य में अपूर्व शोभा और सुकुमारता के साथ वर्णित हुआ है। कालांतर में भारत में इस्लाम शासन की स्थापना से यह पुष्प साहित्य के सिंहासन से उतर गया। भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में यह पुष्प अद्भुत महिमा के साथ वर्णित हुआ है। कामदेव के पंच बाण कमल, अशोक, आम, चमेली तथा नील कमल आदि माने गए हैं। अशोक के छोटे लाल पुष्प कामदेव के पंचबाणों में से एक है। यहाँ की आदिम जातियों गंधर्वों और यक्षों ने अशोक वृक्ष की पूजा को आंरभ किया। अशोक वृक्ष की पूजा वास्तव में इसके स्वामी कामदेव की पूजा है, जिसे मदनोत्सव कहा जाता था। प्राचीन साहित्य में इस उत्सव का बड़ा सरस वर्णन हुआ है। उस समय के राजाओं व सामन्तों के द्वारा इन उत्सवों को संरक्षण मिला। बाद में सामन्तों का प्रभाव समाप्त होने से मदनोत्सव की धूमधाम समाप्त हो गई।

इस निबंध में मानव की जीवन जीने की शक्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि मानव की जीवनी शक्ति अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों को रौंदते हुए आगे बढ़ती जाती है। इसी से

समाज और संस्कृति का रुप परिवर्तित होते रहता है। इसी परिवर्तन ने अशोक वृक्ष के महत्त्व को भी भुला दिया। लेखक अशोक के फूल के वैभवशाली अतीत का स्मरण करते हुए उदास होता है। कोई भी बहुमूल्य संस्कृति सदैव नहीं बनी रह सकती है। परिवर्तन इस संसार का नियम है। लेखक का मानना है कि अशोक आज भी उसी मस्ती में झूम रहा है, जैसा कि वह दो हजार वर्ष पहले था। अतः कहीं भी कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी नहीं बदला है, जो भी परिवर्तन हुआ है, वह मानव की मनोवृत्ति बदलने के फलस्वरुप हुआ है।

14.5 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने निबंध को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। निबंध का सार पढ़ने से आप समझ गए होगें कि इस निबंध में लेखक ने अशोक के फूल के गौरवशाली अतीत व महत्त्व को स्पष्ट किया है। आइए यहाँ हम महत्त्वपूर्ण अंशो की व्याख्या कर उसके अर्थ को ओर अधिक स्पष्ट करेगें। शेष महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या इकाई को पढ़ कर आप स्वयं करने की कोशिश कीजिए।

उद्धरण: 1

अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल सामन्त-सभ्यता की परिष्कृत रूचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के संसार कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों-करोड़ों की उपेक्षा से समृद्ध हुई थी। वे सामन्त उखड़ गये, समाज ढह गये और मदनोत्सव की धूमधाम भी मिट गयी।

संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'अशोक के फूल' से लिया गया है।

प्रसंग:इसमें अशोक पुष्प की महिमा वर्णित करते हुए भारतीय साहित्य और जीवन में इसके प्रवेश और महत्त्व पर विचार किया गया है। तत्कालीन समाज में अशोक वृक्ष की पूजा की जाती थी और मदनोत्सव मनाए जाते थे।

व्याख्या: अशोक के सुंदर पुष्प कामदेव के पंचबाणों में से एक है, इसकी पूजा गंधर्वो और यक्षों द्वारा आरम्भ की गई। इस वृक्ष को रहस्यमय इसलिए कहा गया है किइसमें लाल व सफेद दो प्रकार के पुष्प आते हैं। सफेद पुष्प का प्रयोग तांत्रिक क्रियाओं में तथा लाल पुष्प स्मरणवर्द्धक होता है। प्राचीन साहित्य में यह अद्भुत सौन्दर्य और अलंकारमयता के साथ चित्रित हुआ है। इस वृक्ष की पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन प्राचीन साहित्य में मिलता है। लेखक का मानना है कि इन सबके बावजूद अशोक वृक्ष तत्कालीन सांमत सभ्यता की रूचि का ही परिचायक है। इन सामंतों के द्वारा जनमानस का शोषण किया जाता था। उनके परिश्रम और शोषण से एकत्र धन-सम्पदा का प्रयोग ऐसे ही उत्सवों में किया जाता था। उस समय के समाज में अशोक वृक्ष के स्वामी कामदेव की आराधना के लिए मदनोत्सव मनाया जाता था। कालांतर में सामंत व्यवस्था के उत्कर्ष में कमी तथा समाज में परिवर्तन आने से मदनोत्सव की धूमधाम समाप्त हो गई।

विशेष: 1. इसमें अशोक वृक्ष को सामंत सभ्यता का प्रतीक बताते हुए तत्कालीन सामंत सभ्यता पर व्यंग्य किया गया है।

2. उक्त गद्यांश की भाषा सरल व सहज है।

उद्धरण: 2

हमारे सामने समाज का जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा(जीने की इच्छा)। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है।

संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'अशोक के फूल' से अवतरित है।

प्रसंग:इसमें मनुष्य के जीवन जीने की इच्छा को कठोर बताया गया है, उसकी यही जीने की इच्छा रूपी जीवन धारा कितने ही धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को अपने में समाहित करते हुए निरंतर आगे बढ़ती रहती है।

व्याख्या: वर्तमान में भारतीय समाज का जो स्वरूप हमें दिखाई देता है, वह अनेक सभ्यताओं व संस्कृतियों के ग्रहण और त्याग से निर्मित्त हुआ है। देश और वहाँ निवास करने वाली जाति की शुद्ध संस्कृति की बात अपने आप में सही नहीं है, क्योंकि कोई भी संस्कृति पूरी तरह से शुद्ध नहीं है। भारतीय संस्कृति अनेक सभ्यताओं व संस्कृतियों को अपने में समाहित किए हुए है। लेखक के अनुसार अगर कोई शुद्ध है, तो वह मानव की जीने की इच्छा है। जिस प्रकार गंगा नदी अपने मार्ग में पड़ने वाली छोटी-बड़ी नदियों को अपने में मिलाते हुए निरंतर बहती रहती है, उसी प्रकार मानव के जीवन जीने की इच्छा रूपी धारा अनेक सभ्यताओं व संस्कृतियों को अपने में मिलाते हुए भी पवित्र और प्रवाहमान रहती है।

विशेष: 1. इसमें लेखक ने मानव की जीवनी शक्ति को शुद्ध व महत्त्वपूर्ण माना है, क्योंकी मानव ही सभ्यता वसंस्कृति का जन्मदाता है।

2. उक्त अंश की भाषा सरल, सहज व तत्सम शब्दों से युक्त है।

अभ्यास प्रश्न6. निम्नलिखित उद्धरणों की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए? अगर व्याख्या में कठिनाई महसूस

हो तो, निबंध को दुबारा पढ़िए और इस इकाई का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए?

उद्धरण: 1

आज जिसे हम बहूमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, क्या ऐसी ही बनी रहेगी? सम्राटों-सामन्तों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था, वह लुप्त हो गयीय धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्ध समझा था, वह समाप्त हो गयाय मध्य युग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस-राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भाँति उड़ गयी तो क्या यह मध्य-युग के कंकाल में लिखा हुआ व्यावसायिक-युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा ?

संदर्भ:..

....

....

प्रसंगः

....

....

....

व्याख्या:...

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष:

....

....

....

....

....

....

....

उद्धरण:2

मगर उदास होना ही भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरम्भ हो जाता-मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता-विज्ञान का सवेग धावन चल निकलता, तो बड़ा बुरा होता।

संदर्भ:

....
....
....

प्रसंगः

....
....
....

व्याख्या:

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

विशेष:

....
....
....
....
....
....

14.6 अंतर्वस्तु

निबंध में विचारात्मक और भावात्मक आधार(अतंर्वस्तु), लेखकीय व्यक्तित्व, भाषा और शैली इन चार विशेषताओं का अधिक महत्त्व होता है। इन विशेषताओं को हम निबंध के तत्व भी कह सकते हैं। निबंध में विचारों और भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। ये विचार और भाव ही निबंध की विषयवस्तु या अंतर्वस्तु कही जाती है। आप निबंध का अध्ययन

करके यह तो समझ ही गए होगें कि प्रस्तुत निबंध में लेखक ने अशोक पुष्प के प्रति सहृदयता से विचार किया है। अशोक के फूल को देखकर लेखक के मन में जो विचार और भावनाएँ उत्पन्न हुई, उसी से निबंध की अंतर्वस्तु का निर्माण हुआ। आइए, संक्षेप में निबंध के विचार पक्ष और भावपक्ष पर विचार करें।

14.6.1 विचार पक्ष

आ0 द्विवेदी जी इस निबंध में अशोक पुष्प के महत्त्व के साथ-साथ पाठकों को भारतीय संस्कृति की विकास परम्परा से भी परिचित कराते हैं। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति के निर्माण में असुर, आर्य, शक, हूण, नाग, यक्ष तथा गंधर्व आदि अनेक जातियों का योगदान रहा है। आज हम जिस गौरवमयी संस्कृति की बात करते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येत्तर जातियों का सम्मिश्रण है, यही भारतीय संस्कृति की विशिष्ट्रता है।

प्रस्तुत निबंध का मुख्य विचार बिन्दु भारतीय साहित्य, संस्कृति, दर्शन और इतिहास बोध रहा है। इसमें तत्कालीन युग की सामंत सभ्यता का चित्रण हुआ है। उस समय मदनोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता था, उसको सामंतों का संरक्षण प्राप्त था। आ0 द्विवेदी जी ने अशोक वृक्ष को सामन्त सभ्यता की परिष्कृत रुचि का प्रतीक माना है, जो जनमानस के शोषण से विकसित हुई थी। कालान्तर में इन उत्सवों की धूमधाम समाप्त हो गई और अशोक के फूल के गौरवमयी अतीत को समाज भूल गया। इस निबंध मंे समाज व संस्कृति के बनने और बिगड़ने की प्रक्रिया पर भी चिंतन किया गया है। जगत् के परिवर्तित होने से समाज और संस्कृति भी परिवर्तित होती है। आज समाज का जो स्वरूप दिखाई देता है, उसको बनाने में कितने ही व्यक्तियों ने संघर्ष और त्याग किया है। जिस आधुनिक संस्कृति को आज हम बहूमूल्य समझ रहे हैं, वह भी परिवर्तित होगी और एक नया रूप धारण करेगी। इस बनने और बिगड़ने की प्रक्रिया में लेखक ने मानव के जीवन जीने की इच्छा को सबसे महत्त्वपूर्ण और शुद्ध माना है। ‘‘सब कुछ मेंमिलावट है,सब कुछ अविशुद्ध हैं। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा(जीने की इच्छा)।‘‘ उसका मानना है कि मानव इसी जीवनी शक्ति से समाज व संस्कृति का सृजन करता रहा है।

14.6.2 भावपक्ष

आ0 द्विवेदी जी का यह निबंध भाव प्रधान कहा जा सकता है। इस निबंध में लेखक ने अशोक पुष्प के प्रति एक सहृदय की तरह विचार किया है। वह अशोक के फूल की स्थिति को देखकर उदास है।‘‘भुलाया गया है अशोक! मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस साधना के पिछले हजारों बरसों पर जाना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी? सहृदयता क्या लुप्त हो गयी थी? कविता क्या सो गयी थी?‘‘ उन्होंने इसके माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति व इतिहास पर प्रकाश डालते हुए समाज व संस्कृति के बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया तथा मानव की जीवनी शक्ति को भी उद्घाटित किया है।

इस निबंध में लेखक के विचार भावात्मक रुप में हमारे सामने आते हैं। एक उदाहरण- ‘मैं क्या शौक से उदास हुआ हूँ? माया काटे कटती नहीं। उस युग के साहित्य और शिल्प मन को मसल दे रहे हैं। अशोक के फूल ही नहीं, किसलय भी ह्दय को कुरेद रहे हैं।‘‘

उपरोक्त उदाहरण में ‘‘शौक से उदास‘‘, ‘‘मन को मसले दे रहे हैं‘‘ व ‘‘ह्दय को कुरेद रहे हैं‘‘ जैसे पद प्रयोग लेखक की ह्दयगत भावनाओं का प्रभावी वर्णन करने में सफल हुए हैं।

अभ्यास प्रश्न7. निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइए?

(क) आ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति और प्राचीन इतिहास के प्रति आस्थावान हैं। (सत्य/असत्य)

....

....

(ख) ‘अशोक के फूल‘ निबंध में तत्कालीन भारतीय संस्कृति प्रकट नहीं होती है। (सत्य/असत्य)

....

....

(ग) ‘अशोक के फूल‘ निबंध भाव प्रधान है। (सत्य/असत्य)

....

....

अभ्यास प्रश्न8. द्विवेदी जी के निबंध ‘अशोक के फूल‘ में संस्कृति बोध को स्पष्ट कीजिए? उत्तर चार

पंक्तियों में लिखिए?

....

....

....

....

14.7 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

ललित निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व अधिक परिलक्षित होता है। आ0 द्विवेदी जी का व्यक्तित्व उनके निबंधों में प्रत्यक्ष रुप में विद्यमान रहा है। अब हम इस निबंध को पढ़कर उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को समझने का प्रयास करेगें।

प्रस्तुत निबंध में अशोक पुष्प के गौरवशाली अतीत का वर्णन करते हुए तत्कालीन भारतीय समाज व संस्कृति पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। आ0 द्विवेदी जी के भारतीय संस्कृति, साहित्य व दर्शन के प्रति रुचि को इस निबंध में स्पष्ट महसूस किया जा सकता हैं। उनका यह निबंध सांस्कृतिक बहुलता का प्रमाण है, उनके अनुसार-''रवीन्द्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' कहा है। विचित्र देश है यह!असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गंधर्व आये-न जाने कितनी मानव-जातियाँ यहाँ आयी और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गयीं। जिसे हम हिन्दु रीति-नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का मिश्रण है।'' अतः द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति और प्राचीन इतिहास के प्रति आस्थावान हैं। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति का स्वरुप संकुचित, सीमित स्थान या काल विशेष के दायरे में न आकर अत्यन्त व्यापक है, जिसको किसी धर्म, जाति आदि में नहीं बाँधा जा सकता है।

द्विवेदी जी का पाण्डित्य भी उनके निबंधों में देखा जा सकता है। वे इतिहास, पुराण, साहित्य आदि से गंभीर तथ्य लेते हुए, उसको समसामयिकता से जोड़ देते हैं। प्रस्तुत निबंध में उन्होंने कालिदास, बुद्ध, विक्रमादित्य, महादेव, राम, कन्दर्प, गन्धर्व, यक्ष, शैव मार्ग, शक्ति साधना, वज्रयान, कौल साधना, कापालिक, आर्य और आर्यत्तर जातियाँ, वामन पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थ, महाभारत, अशोक कल्प, सरस्वती कण्ठाभरण, मालविकाग्निमित्र, रत्नावली आदि का उल्लेख किया है, जो उनके प्राचीन भारतीय इतिहास, साहित्य और संस्कृति बोध को प्रकट करता है। उनका यह पाण्डित्य निबंध को कठिन और बोझिल न बनाकर सहज बनाने में सहायक होता है।

इन निबंधों में द्विवेदी जी का विचारक और मानवतावादी दृष्टिकोण भी स्पष्ट दिखाई देता है। वे किसी भी सामान्य विषय पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुए उसे नए सामाजिक सन्दर्भ और आधुनिक युगबोध से जोड़ देते हैं। प्रस्तुत निबंध में अशोक वृक्ष का सांस्कृतिक महत्त्व बतलाते हुए वे मानव के संघर्ष को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। एक उदाहरण-''सघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का आज जो रुप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रुप है।'' निबंध के उपरोक्त अंश से यह स्पष्ट है कि समाज व संस्कृति के बनने बिगड़ने में मानव के संघर्ष की अहम भूमिका है। संघर्ष से ही मानव ने समाज वसंस्कृति का निर्माण किया है। अतः इस निबंध में द्विवेदी जी के लेखकीय व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएं यथा भारतीय साहित्य व संस्कृति के प्रति गहन आस्था, पाण्डित्य, विचारक व मानवतावादी दृष्टि आदि प्रकट होती हैं।

14.8 संरचना शिल्प

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के प्रमुख निबंधकार हैं। आपने ललित निबंध नामक निबंध की नई शैली विकसित की है। यह निबंध ललित निबंध की श्रेणी में आता है। आइए भाषा और शैली की दृष्टि से इस निबंध की विशेषताओं पर विचार करें।

14.8.1 भाषा:

आ0 द्विवेदी जी की भाषा परिनिष्ठित व परिष्कृत है। वे अपनी भाषा को विषय और प्रसंग के अनुसार बदलते रहते हैं, अतः उनकी भाषा में अधिक लचीलापन है। उनकी भाषा शब्द चयन से लेकर वाक्य रचना तक विविधता को लिए हुए है।

इस निबंध की भाषा तत्सम प्रधान है, लेकिन आवश्यकतानुसार इसमें तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी-फारसी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इसमें सौकुमार्य, नववधू, आसिंजनकारी, कर्णावतंस, विद्रुम, सुकुमार, सान्निध्य, अंकित तथा जिजीविषा आदि तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसी तरह अरबी-फारसी शब्दों में सल्तनत, सबूत, गवाह, मालूम, मुसाहिब, मौज, शौक व रईस आदि भी सहज भाव से प्रयुक्त हुए हैं। इस निबंध में झबरा, बोझ आदि देशज शब्द भी मिलते हैं, जो भाषा में लोक संवेदना का विस्तार करनें में सहायक हैं। इसमें पुनालुअन सोसाइटी आदि अंग्रेजी शब्द भी प्रयोग हुए हैं।

इस निबंध में छोटे-छोटे वाक्य और बोलचाल के शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे निम्न वाक्य:

''मगर उदास होना भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था।''

जहाँ पर बौद्धिक विवेचन हुआ है, वहाँ वाक्य लम्बे और तत्सम शब्द प्रधान हैं। जैसे निम्न वाक्य:-

''सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण-भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाते हैं।'' यह एक लम्बा वाक्य है, लेकिन अर्थ की दृष्टि से स्पष्ट है, क्योंकि इसमें कई उपवाक्यों का प्रयोग हुआ है।

14.8.2 शैली:

'अशोक के फूल' निबंध एक ललित निबंध है, जो ललित शैली में लिखा गया है। इस शैली में लेखक निजता, कलात्मकता तथा कल्पनाशीलता के प्रति सजग रहता है। इस निबंध में लेखक की निजता या व्यक्तित्वस्पष्ट दृष्टव्य होता है। वह अशोक के फूल की समृद्ध गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा को निरुपित करता है। अशोक वृक्ष को मनोहर, रहस्यमय और अलंकारमय बताने के साथ-साथ वह उसको सांमत सभ्यता का भी प्रतीक बताता है, जो साधारण जन-मानस के परिश्रम व शोषण से समृद्ध हुई थी। लेखक का यह दृष्टिकोण उसकी निजता का ही परिणाम है।

ललित शैली की दूसरी विशेषता उसकी कलात्मकता में निहित है। इस निबंध में लेखक ने प्रस्तुतीकरण पर विशेष पर बल दिया है। कहीं उन्होंने अपनी बात सरल व सहज शब्दों से युक्त सरल वाक्यों तथा कहीं पर तत्सम शब्दावली, अर्थगाम्भीर्य को लिए हुए लम्बे वाक्यों में अपनी बात को कहा है। उनका सहृदय कवि रुप भी इस निबंध में व्यक्त हुआ है। ''सुन्दरियों के आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों केमृदु आघातों से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रुप में झलकता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ-गुना बढ़ा देता था।

वह महादेव के मन में क्षोभ पैदा करता था, मर्यादा-पुरुषोंत्तम के चित्त में सीता का भ्रम पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कन्धे से ही फूट उठता था।''

इस शैली की तीसरी विशेषता उसकी कल्पनाशीलता है। द्विवेदी जी के अधिकांश निबंध प्राकृतिक उपादान तथा सामान्य विषयों से संबंधित हैं। परंतु ये सभी निबंध अर्थ की दृष्टि से गम्भीर वैचारिकता देने वाले हैं। 'अशोक के फूल' निबंध में लेखक अशोक के छोटे-छोटे, लाल-लाल पुष्पों को देखकर उदास हो जाता है, वह भारतीय साहित्य और समाज में इस पुष्प के प्रवेश और निर्गम पर विचार करते हुए उसके वैभवशाली अतीत में खो जाता है। यह लेखक की कल्पनाशीलता ही है, कि वह अशोक वृक्ष की तह में जाकर भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा को निरुपित करते हुए सभ्यता व संस्कृतियों के बनने-बिगड़ने का रोचक वृतांत प्रस्तुत करता है। अतः यह निबंध निजता, कलात्मकता और कल्पनाशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

अभ्यास प्रश्न9. द्विवेदी जी के मानवतावादी दृष्टिकोण पर चार पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए?

....

....

....

....

....

....

अभ्यास प्रश्न10. भाषा की दृष्टि से इस निबंध की तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?

....

....

....

....

अभ्यास प्रश्न11. निबंध का प्रतिपाद्य तीन पंक्तियों में लिखिए?

....

....

....

....

अभ्यास प्रश्न12. निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइए?

(क) द्विवेदी जी का पाडित्य निबंध को कठिन और बोझिल बनाता है।(सत्य/असत्य)

....

(ख) 'अशोक के फूल' निबंध एक ललित निबंध है।(सत्य/असत्य)

....

(ग) इस निबंध की भाषा तत्सम प्रधान है। (सत्य/असत्य)

14.9 प्रतिपाद्य:

इस निबंध का केंद्रीय भाव अशोक पुष्प के माध्यम से भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा से पाठकों को अवगत कराना रहा है। सर्वप्रथम लेखक साहित्य और जीवन में अशोक पुष्प के आगमन पर विचार करते हुए उसके इतिहास से परिचित कराता है। वह भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में उसकी अद्भुत महिमा का वर्णन करते हुए गंधर्वो व यक्षों द्वारा अशोक वृक्ष की पूजा आरम्भ करने तथा मदनोत्सव आदि मनाए जाने का उल्लेख करता है। इस उत्सव के द्वारा लेखक ने उस काल की सांस्कृतिक परम्परा को दिखाया है।

प्रस्तुत निबंध में लेखक पाठकों को उस युग की समृद्ध संस्कृति से परिचित कराते हुए उसको मानव की जीवनी शक्ति रूपी जीवनबोध से जोड़ कर देखता है। उसके अनुसार कोई भी संस्कृति अपने आप में पूरी तरह से शुद्ध नहीं है, वह अपने से पूर्व की सभ्यताओं व संस्कृतियों के ग्रहण और त्याग से बनती है। मानव के जीवन जीने की इच्छा ही शुद्ध है, वही सभ्यताओं और संस्कृतियों का सृजन करती है। इस जीवन धारा में सभ्यता व संस्कृति का मोह भी बह जाता है, जो इस जीवनी शक्ति को समर्थ बनाता है, वही उसका भाग बन पाता है। अतः द्विवेदी जी के निबंधों में विद्वता व सहृदयता का संयोग है। उनका व्यक्तित्व लचीला और निरंतर विकासमान रहा है। वे अपने निबंधों को सांस्कृतिक विरासत के वर्चस्व के साथ-साथ उसको नवीन जीवन बोध से सम्बद्ध कर देते हैं।

इस निबंध का शीर्षक 'अशोक के फूल' उपयुक्त है। द्विवेदी जी ने अपने निबंध में अशोक पुष्प को केन्द्रित रखकर ही विस्तार से विचार किया है।

14.10 सारांश:

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस निबंध में अशोक पुष्प के गौरवमयी अतीत और महत्त्व को वर्णित करते हुए तत्कालीन समाज की संस्कृति को प्रकाशित किया है। इस निबंध का मुख्य विचार बिन्दु भारतीय साहित्य, संस्कृति, दर्शन और इतिहास बोध रहा है। द्विवेदी जी ने संस्कृति के बनने- बिगड़ने की प्रक्रिया का विवेचन करते हुए मानव की जीवनी शक्ति को परिष्कृत व महत्त्वपूर्ण माना है।प्रस्तुत निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की कई विशेषताएं यथा पाण्डित्य, विचारक व मानवतावादी दृष्टिकोण तथा भारतीय इतिहास, साहित्य, संस्कृति और दर्शन के प्रति आस्था आदि अभिव्यक्त हुई हैं। आप स्वयं इन विशेषताओं को इस निबंध में पहचान सकते हैं।

निबंध की भाषा सरल, सहज और भावप्रवण है। इसकी शब्दावली तत्सम प्रधान है, इसमें आवश्कतानुसार तद्भव, देशज, अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।यह एक ललित निबंध है। निजता, कलात्मकता और कल्पनाशीलता इसकी शैलीगत प्रमुख विशेषताएं हैं। निबंध का केंद्रीय भाव सांस्कृतिक विरासत का निरूपण है। इसके केंद्रीय भाव और प्रतिपाद्य का विवेचन आप इस इकाई को पढ़कर कर सकते हैं।

14.11 पारिभाषिक शब्दावली

नाटकीय -	अभिनयपूर्ण, जो दिखावटी, चटकीला या भड़कीला हो।
कालीदास-	संस्कृत के विख्यात रचनाकार, जिन्होनें अभिज्ञान शाकुंतलम, मेघदूत, रघुवंश व कुमारसंभव आदि ग्रथों की रचना की।
सौकुमार्य-	सुकुमारता, यौवन।
विक्रमादित्य-	गुप्त वंश के प्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय, जिनके नाम से विक्रम संवत आरम्भ हुआ।
नूपुर-	पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना, घुँघुरु।
अलकों-	छल्लेदार बालों।
अभिभूत-	पराजित, पीड़ित, स्तब्ध या चकित।
उपास्थ-	पूजा किए जाने योग्य, आराध्य।
पयार्य-	समान अर्थ वाला, समानार्थक।
अधिष्ठाता-	अध्यक्ष, प्रधान,स्वामी।
स्तबक-	फूलों का गुच्छा।
गन्धर्व, यक्ष-	प्राचीन भारतीय जातियाँ जिनका उल्लेख हिन्दु पुराणों में मिलता है।
अखाड़ा-	मठ, मंडली।
परिष्कृत-	साफ किया हुआ, शुद्ध।
प्रतीक-	चिह्न, निशान, संकेत।
उपेक्षा-	तिरस्कार, अवहेलना।
दुर्दम-	जिसका दमन कठिनाई से हो, प्रबल।
निर्मम-	जिसे ममता या मोह न हो, कठोर।
वृथा-	व्यर्थ, निरर्थक।
विशुद्ध-	जिसमें किसी प्रकार की मिलावट न हो, वास्तविक।
सहृदय-	दूसरों के सुख-दुःख आदि समझने वाला, भावुक।
महार्ध-	बहुत अधिक मूल्य का, महँगा।
विकृत-	जिसमें किसी प्रकार का विकार हो, जिसका रूप बिगड़ गया हो।
नवीन-	नया।

14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर‘निबंध का पाठ‘ शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।
3. (घ)
4. विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर ‘निबंध का पाठ‘ शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।
5. विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर ‘निबंध का पाठ‘ शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

6. विद्यार्थी उद्धरण 1 एवं 2 की व्याख्या के लिए शीर्षक ‘संदर्भ सहित व्याख्या‘ को ध्यान से पढ़ेंगे।

7. (क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) सत्य

8. विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर ‘अतंर्वस्तु‘ शीर्षकके उपशीर्षक ‘विचार पक्ष‘से पढ़कर लिखेंगे।

9. विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर ‘लेखकीय व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति‘ शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

10. विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर ‘संरचना शिल्प‘ शीर्षक के उपशीर्षक ‘भाषा‘ से पढ़कर लिखेंगे।

11. विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर ‘प्रतिपाद्य‘ शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

12. (क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

14.13 सदर्भ ग्रंथ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी : ‘अशोक के फूल‘, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण, 2007।

2. डॉ0 हरिमोहन : ‘प्रतिनिधि हिन्दी निबंधकार‘, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2003।

3. बच्चन सिंह : ‘ साहित्यिक निबंध: आधुनिक दृष्टिकोण‘, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2009।

4.डॉ0 नगेन्द्र : ‘ हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपरबैक्स, नोएड़ा, संस्करण 2009।

14.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी: ‘अशोक के फूल‘ लोकभारती प्रकाशन, संस्करण, 2007

2. डॉ0 हरिमोहन: ‘हिन्दी निबंध के आधार स्तम्भ‘, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2005।

3. रामप्रसाद किचलु : ‘आधुनिक हिन्दी निबंध‘, राजकिशोर प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2007।

4. डॉ0 बाबूराम : 'हिन्दी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2008।

14.14 निबंधात्मक प्रश्न:

1. निबंध के तत्वों के आधार पर 'अशोक के फूल' की समीक्षा कीजिए?
2. 'अशोक के फूल' निबंध की भाषा और शैली संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

इकाई 15 आत्मकथा 'अपनी खबर ' : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 पाठ का उद्देश्य
15.3 आत्मकथा साहित्य: इतिहास एवं विशेषता
15.3.1 पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : जीवन परिचय और साहित्य
15.3.2 आत्मकथा साहित्य का इतिहास
15.3.3 आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ
15.3.4 आत्मकथा साहित्य और 'अपनी खबर'
15.4 'अपनी खबर': परिचय, पाठ एवं आलोचना
15.4.1 'अपनी खबर': परिचय
15.4.2 'अपनी खबर': पाठ विश्लेषण
15.4.3 'अपनी खबर': आलोचनात्मक मूल्यांकन
15.5 'अपनी खबर': कृति के रूप में प्रदेम
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 उपयोगी पाठ सामग्री
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने नाटक, उपन्यास एवं कहानी विधा का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। द्वितीय प्रश्न पत्र अन्य गद्य विधाओं पर केन्द्रित है। इस प्रश्न पत्र में आपने पूर्व में निबंध, आत्मकथा, जीवनी, आलोचना, व्यंग्य, डायरी, यात्रावृत्त, संस्मरण, रेखाचित्र का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। साहित्य की प्रारंभिक दशा में विधागत इतने भेद नहीं हुआ करते थे। प्रारभिक अवस्था में केवल गद्य और पद्य का मोटा विभाजन प्रचलित था किन्तु कालान्तर में सामाजिक एवं एतिहासिक विकास क्रम में मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की नयी नयी विधाएँ अस्तित्व लेने लगीं। साहित्यक विधाओं के अस्तित्व लेने के पीछे ठोस सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण थे। उदाहरणस्वरूप हम प्रमुख विधाओं की उत्पत्ति के पीछे छिपे कारणों की संक्षेप में चर्चा करेंगें। जिससे हम उन विधाओं को और अच्छी तरह समझ सकेंगे। सभी साहित्यिक विधाओं में सबसे प्राचीन विधा कविता का जन्म भय-स्तुति एवं श्रम -परिहार के बीच हुआ है। प्रकृति से भय एवं देवताओं की स्तुति हमारे वेदों की उत्पत्ति का कारण है, उसी प्रकार कृषि - कर्म के दौरान गाये जाने वाले गीत लोक - गीतों का आधार बनते है। नाटक की उत्पत्ति के पीछे जहाँ अनुरण की वृत्ति है वहीं कहानी की उत्पत्ति के पीछे कहने का भाव यानी मनोरंजन है। इसी प्रकार 'महाकाव्य' के अस्तित्व के पीछे मानव समाज एवं संस्कृति को व्यापक रूप में चिन्तित करने की प्रवृत्ति काम कर रही थी।

आधुनिक विधाएँ विशेषकर उपन्यास, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोतार्ज, डायरी, निबन्ध, व्यंग्य, लघु कथा, जैसी विधाएँ आधुनिक जीवन की जटिलताओं के बीच अपने आपको प्रकाशित करने की छटपटाहट के बीच निर्मित हुई है। आइए हम प्रमुख विधाओं के अंतर्सम्बन्ध को एक आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करें।

प्रस्तुत इकाई 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' के परिचय, पाठ एवं आलोचना पर आधारित है।

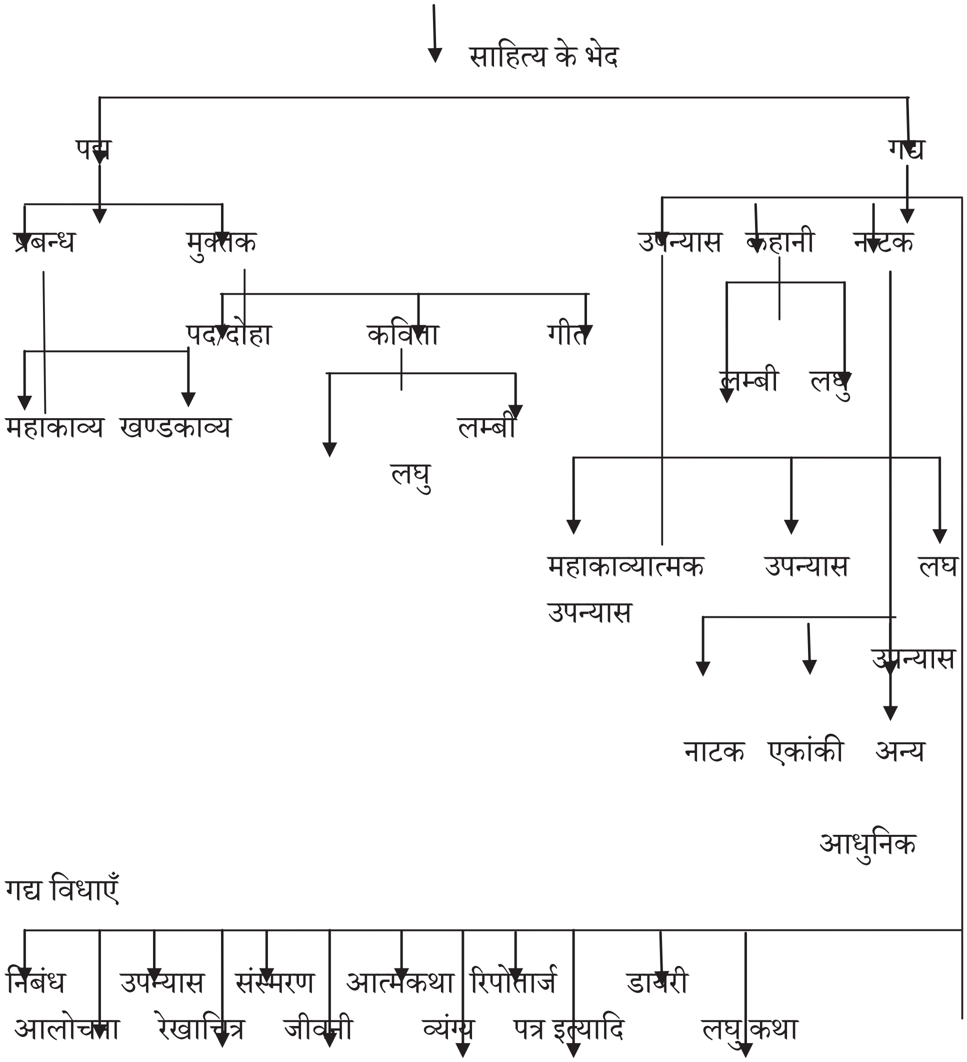

ऊपर के आरेख से स्पष्ट है कि 'आत्मकथा ' विधा आधुनिक गद्य विधाओं की श्रेणी में आती है। आत्मकथा का तात्पर्य ऐसी गद्य विधा से है, जिसमें लेखक अपने बारे में (समाज भी शामिल है) सृजनात्मक ढंग से अतीत को खंगालता है। आत्मकथा लेखन का बड़ा गुण ईमानदारी मानी जाती है, इस दृष्टि से पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' विशेष महत्वपूर्ण है। आगे हम विस्तार से आलोच्य पाठ का परिचय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

15.2 उदेश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- आधुनिक साहित्यिक विधाओं के भेदों से परिचित हो सकेंगे।

- आत्मकथा विधा के इतिहास को जान सकेंगे।
- आत्मकथा की प्रमुख विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र ' के जीवन एवं कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- 'अपनी खबर ' आत्मकथा की आलोचना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे

15.3 आत्मकथा साहित्य: इतिहास एवं विशेषता

इस इकाई की प्रस्तावना एवं पाठ का उद्देश्य के माध्यम से आप इस तथ्य से अवगत हो चुके है कि 'आत्मकथा' साहित्य आधुनिक युग की उपज है। फिर प्रश्न यह है कि आत्मकथा साहित्य मध्यकाल तक क्यों नही प्रचलित रूप में लिखा जाता था ? हमें मालूम है मध्यकाल तक के साहित्य में लेखक अपने बारे में कम से कम लिखता था । बहुत हुआ तो आत्मानुभूति एवं समाजानुभूति की प्रक्रिया में लेखक पंक्ति में अपना नाम लिख देता था। अपनी जाति, कुल, वंश -परम्परा के बारे में जिक्र कर देना भर आत्मकथा नहीं है। 'आत्मकथा' तो संपूर्ण समान की गतिशीलता के बीच लेखक द्वारा अपनी भूमिका की तलाश का सृजनात्मक प्रयास है। आत्मकथा के नाम पर मध्यकाल में भी आत्मकथा मिलती है, लेकिन जिस आधुनिक आत्मकथा साहित्य की यहाँ बात की जा रही है, वह मध्यकाल में कैसे संभव है। आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की भावना मूल रूप में रहती है। हम जानते हैं कि पूँजीवादी विकास क्रम में व्यक्तिगत के प्रकाशन पर बहुत बल दिया जाने लगा था। पूँजीवादी के विकास से पूर्व अपने बारे में कुछ बोलना या लिखना 'अंहकार' का ही सूचना समझा जाता था। आधुनिक युग में सामाजिक विकास की गतिशीलता की प्रक्रिया में एक दूसरे को अपने अनुभवों से लाभ देने की भावना ने आत्मकथा साहित्य के उत्प्रेरक का काम किया। आज समाज से निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। व्यक्ति की निजी अनुभूतियाँ सामाजिकता के स्पर्श से सामाजिक संपत्ति बन जाती हैं। व्यक्ति /लेखक में 'स्व' की अनुभूति जितनी तीव्र होगी वह आत्मप्रकाशन की ओर उतना ही तेजी से मुड़ेगा। अभी आपने पढ़ा कि आत्मकथा साहित्य के उदय की पृष्ठभूमि क्या है। आगे आप आत्मकथा साहित्य के प्रमुख इतिहास से परिचय प्राप्त करेंगे।

15.3.1 पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जीवन परिचय एवं साहित्य

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी का जन्म सन् 1900 ई. में मीरजापुर (उ.प्र.) के चुनार जिले में हुआ था। आपका पूरा जीवन आर्थिक व सामाजिक - सांस्कृतिक संघर्षों के बीच ही निर्मित हुआ। बाल्यकाल में ही आपके पिता की मृत्यु हो जाने के कारण आप का प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त संकटग्रस्त हो गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा चुनार एवं वाराणसी में हुई। स्कूली शिक्षा बाधित होने तथा अर्थाभाव के कारण आप बहुत दिनों तक अपने बड़े भाई के साथ अयोध्या के महन्तों की रामलीला मण्डलियों में सीता और भारत का अनुभव करते रहे। बड़े भाई के मण्डली संचालकों से मनमुटाव होने के बाद आपने मण्डलियों में अभिनय करना भी छोड़

दिया। जगह-जगह घूमकर नाटक मण्डली के अभिनय करने के उपरान्त उग्र जी को हुए लोक अनुभव ने आपके साहित्य को काफी समृद्ध किया। नाटक मण्डली के उपरान्त चाचा की कृपा से आपने वाराणसी में फिर शिक्षा आरम्भ की, लेकिन उसे चुनार गये, लेकिन उसे बीच में ही छोड़ना पड़ा। वाराणसी से आप चुनार गये, लेकिन भाई के डर से कलकत्ता भाग गये। आजीविका का पर्याप्त सोत्र न मिल पाने के कारण 'उग्र' जी वापस काशी चले आये। सन् 1921 में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण उग्र को जेल जाना पड़ा। उसके पश्चात् आप 1921 से 1924 ई. तक 'आज' पत्र में 'अष्टावक्र' उपनाम से राष्ट्रीय कहानियाँ लिखते रहे। 1924 ई. मे उग्र जी ने एक नयी पत्रिका 'स्वदेश' नाम से निकाली । पत्रिका राष्ट्रीय भाव बोध से परिपूर्ण थी, फलतः आपको सरकारी कोप का भाजन बनना पड़ा। सरकारी वारण्ट से बचने के लिए आप पुनः कलकत्ता चले गये। कलकत्ते में 'उग्र' जी तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र 'मतवाला' के संपादन से जुड़े। 'मतवाला' पत्र ने 'उग्र' जी की साहित्यिक प्रतिभा निखारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 'मतवाला' की आर्थिक स्थिति बिगड़ने के पश्चात् आप बम्बई चले गये। वहाँ आप फिल्मों में लेखन का कार्य करने लगे। इसी बीच 'स्वदेश' संपादन के जुर्म में गिरफ्तार कर आपको गोरखपुर लाया गया। कैद से छूटकर उग्र जी पुनः 'आज' पत्र मे काम करने लगे। काशी से 'उग्र' जी इन्दौर चले गये। जहाँ आपने 'वीणा' और 'स्वराज' का संपादन किया। इसी बीच आपने कुछ दिन उज्जैन रहकर 'विक्रम' नामक पत्र का संपादन भी किया।

15.3.2 आत्मकथा साहित्य का इतिहास

छात्रो ! पूर्व में आपने साहित्य का विभाजन तथा गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं के बारे में संक्षिप्त रूप से अध्ययन किया। आपने आधुनिक गद्य विधाओं की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि को भी समझने का प्रयास किया। इसी क्रम में आपने आत्मकथा साहित्य की पृष्ठभूमि को भी समझने का प्रयास किया। आत्मकथा साहित्य आधुनिक काल में ही क्यों लोकप्रिय और प्रतिष्ठित हुआ ? आप इस प्रश्न के उत्तर से भी परिचित हो चुके हैं। अब आप आत्मकथा साहित्य के संक्षिप्त इतिहास का अध्ययन करेंगे।

हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा मध्यकाल में लिखी गई थी। बनारसीदास जैन की आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' को हिंदी की पहली आत्मकथा होने का गौरव प्राप्त है। 1641 ई. में 'अर्द्धकथानक' का लेखन वर्ष है। कृति में लेखक ने रचनाकाल का उल्लेख किया है। ''सोलहवै अट्ठानवे, संवत् अगहन मास। सोमवार तिथी पंचमी, सुबल पक्ष परगास"। कृति के नामकरण के सम्बन्ध में उन्होंने तर्क दिया है कि चूँकि मनुष्य की उम्र 110 वर्ष लगभग है, इसलिए इसकी आधी 55 वर्ष का विवरण कृति में विवरण दिया है। अतः ग्रन्थ का नाम अर्द्धकथानक सार्थक है। अपनी कृति की भाषा को लेखक ने मध्यदेश की बोली कहा है। रचना की भाषा का मूल ढाँचा ब्रजभाषा का है जिससे खड़ी बोली का पुट है। अर्द्ध कथानक 675 छंदों में समाप्त हुआ है। अर्द्धकथानक का प्रधान छन्द चौपाई और दोहा है। आत्मकथा मे ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख हुआ है। जो इतिहास की पूर्ति कर पाने मे सक्षम है। अपने जीवन के उतार - चढ़ाव का वर्णन हो या तत्कालीन व्यापार व्यपस्था या राजतंत्र सभी का आभाष कृति में मिलता है।

अर्द्धकथानक के अतिरिक्त मध्यकाल मे किसी अन्य प्रामाणिक रचना की सूचना प्राप्त नहीं हुई है। फिर क्या कारण है कि ‘अर्द्धकथानक’ और आधुनिक आत्मकथाओं में भेद किया गया है। इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि ‘अर्द्धकथानक’ ब्रज भाषा में लिखित पद्धबद्ध रचना है। आधुनिक आत्मकथा का मूल गुण सामाजिक जीवन की गतिशीलता की प्रक्रिया से अपनी भूमिका को जोड़ने का सृजनात्मक प्रयास है। आइए अब हमें आधुनिक प्रमुख आत्मकथाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

आधुनिक काल में आत्मकथा साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ‘कुछ आपबीती, कुछ जगबीती’ नाम से आत्मकथा लिखी है, जो अधूरी है। भारतेन्दु की आत्मकथा उनके जीवन के प्रारम्भिक वर्षो के चिरण और सामाजिक अवरूद्धता के चित्रण के लिए जानी जाती है। स्वामी दयानन्द जी की आत्मकथा का बड़ा हिस्सा उनके याथानों से संबंधित है। भारतेन्दु युग के पश्चात् ‘द्विवेदी युग ’ में आत्मकथा के छुटपुट प्रयास होते रहे। सन् 1901 ई० में अम्बिकादत्त व्यास ने ‘निजवृत्तान्त ’नामक आत्मकथा लिखी। स्वामी श्रृद्धानन्द की आत्मकथा ‘कल्याण मार्ग का पक्षिक ’ नाम से प्रकाशित हुई है। आत्मकथा साहित्य का वास्तविक विकास छायावादी साहित्य के उत्थान काल के बाद शुरू होता है। छायावाद ने पहली बार ‘स्व’ के प्रकटीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। प्रेमचन्द के संपादकत्व में ‘हंस’ पत्रिका का सन् 1932 में प्रकाशित ’ आत्मकथा विशेषांक ‘इस ढंग का हिंदी में पहला प्रयास है। इस विशेषांक के माध्यम से आत्मकथा साहित्य की अनिवार्यता के पक्ष या विपक्ष में विचारोंन्तेक बहस हुई, जिससे इस विधा के प्रचार - प्रसार एवं प्रतिष्ठा में काफी बल मिला। आत्मकथा के विधान की दृष्टि से श्यामसुन्दर दास की ‘मेरी आत्मकहानी’ हिंदी की पहली व्यवस्थि आत्मकथा है । यह आत्मकथा सन् 1941 में प्रकाशित हुई। इसी क्रम में राजेन्द्र प्रसाद की ‘आत्मकथा’ भी महत्वपूर्ण रचना है। यह आत्मकथा लेखक के व्यक्तिगत जीवन की सूचना के साथ ही साथ सम्पूर्ण समकालीन घटनाओं, व्यक्तियों एवं आन्दोलनों की भी प्रामाणिक रूप से हमारे सामने प्रस्तुत करती है। इसी परम्परा में कुछ और आत्मकथाएँ है। - गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ', सियारामशरण गुप्त की ‘झूठ - सच’, ‘बाल्य स्मृति ’ , राहुल सांकृप्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा', यशपाल की आत्मकथा ‘सिंहावलोकन’, वियोगीहरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन - प्रवाह' इत्यादि । हिंदी साहित्य में सर्वाधिक चर्चित आत्मकथा हरिवंशराय बच्चन की चार खण्डों में प्रकाशित आत्मकथा – ‘क्या भूलूँ क्या याद करूँ’, ‘नीड़ का निर्माण फिर’, ’ बसेरे से दूर एवं दशद्वार से सोपान तक' रही है।

15.3.3 आत्मकथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ

जैसा कि आपने पूर्व में पढ़ लिया है कि आत्मकथा साहित्य आधुनिक युग की गद्य विधा है। आत्मकथा या अत्य गद्य विधाएँ पद्य में क्यों नहीं लिखी जा सकतीं ? क्योंकि आधुनिक जीवन बुद्धि एवं विचार प्रधान युग है और इसके लिए गद्य के माध्यम ही उपयुक्त होते हैं पद्य के नहीं । पद्य मूलतः बिम्ब के आधार पर निर्मित होते है और मूलत: भाव को लेकर चलते हैं इसलिए सारी आधुनिक साहित्यिक विधाएँ गद्य में ही निर्मित हुई हैं । प्रश्न उठता है कि

'आत्मकथा ' साहित्य की शुरूआत किन परिस्थितियों में हुई ? आपने आत्मकथा साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुउ देखा कि मध्यकाल तक आत्मकथा उस रूप में यह आज लिखी जाती है। मध्यकालीन कवि कभी-कभार एक दो पंक्तियों में अपने जीवन संबंधी विवरण दे दिया करते थे , किन्तु वह आत्मकथा की शर्तों का पालन नहीं करते हैं।

आइए अब हम देखें कि आत्मकथा साहित्य की मूल प्रवृत्ति क्या है ? 'आत्मकथा' दो शब्दों से मिलकर बना है। आत्म ओर कथा यानी लेखक द्वारा खुदी की लिखी गई जीवनी । जिस विधा में लेखक अपने प्रारंभिक जीवन से लेकर संम्पूर्ण जीवन का सृजनात्मक ढंग से रेखांकन करता है, उसे हम आत्मकथा कह सकते हैं। ' आत्मकथा के लिए यह शर्त नहीं है कि वह संम्पूर्ण जीवन का रेखांकन प्रस्तुत करे । हो सकता है कि कोई लेखक अपने जीवन के किसी एक समय को ही रेखांकित करे । इसीलिए ज्यादा अच्छा यह होता है कि लेखक जीवन के लम्बे हिस्से को अपनी लेखनी का विषय बनाये । आत्मकथा के लिए कहा गया है कि इसमें लेखक द्वारा अपनी खबर लेना और अपनी खबर पाठकों को देना - ये दोनों प्रक्रियाएँ शामिल हैं । आत्मकथा में लेखक सबसे पहले तो आत्मान्वेषण करता है । इस प्रक्रिया में सामाजिक अन्वेषण एवं सत्यान्वेषण की प्रक्रिया भी साथ चलती रहती है । इसीलिए आत्मकथा का एक बड़ा गुण प्रामाणिकता मानी जाती है। इसमें लेखक जिन आकंड़ो, तथ्यों को प्रस्तुत कर रहा है, वे सत्य हों । चूँकि लेखक के जीवन में घटित घटनाओं का साक्षी स्वयं लेखक होता है, इसीलिए सत्य का एकमात्र प्रामाणिक स्तोत भी स्वंय लेखक ही होता है। इसीलिए आत्मकथा में प्रामाणिकता का होना इसकी बड़ी शर्त मानी गई है। आत्मकथा में जीवन की प्रामाणिक एवं तथ्यपरक घटनाओं की अपेक्षा होती है, इसीलिए इसमें कल्पना एवं कुत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं होता। आत्मकथा मे अतीत की घटनाएं ही केंद्र में रहती हैं इसलिए भी इसमें प्रामाणिकता की संभावना ज्यादाहोती है। चूँकि आत्मकथाके मूल में आत्मनिर्माण या आत्म-परीक्षण अथवा दुनिया के जटिल परिवेश में अपने आपको जानने-समझने की इच्छा मख्य होती है, इसलिए आत्मकथा लेखक का बहुत बड़ा गुण उसकी ईमानदारी होती है। ईमानदारी के अभाव में आत्मकथा के आत्मप्रशंसा-प्रशस्ति बन जाने का बहुत बड़ा खत्तरा होता है। आत्मकथा में लेखक के जीवन का वास्तविक साक्ष्य चूँकि लेखक के ही पास होता है, इसीलिए भी लेखक से ईमानदारी की बहुत अपेक्षा होती है। आत्मकथा का एक अन्य गुण यह है कि लेखक के बहाने पाठक को एक युग के जीवन और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज प्राप्त होता है। आत्मकथा वैसे ता ज्यादातर महापुरूषों, लेखकों, सफल पुरूष/युवतियों या चर्चित व्यक्तित्व द्वारा ही लिखे जाते हैं, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। आत्मकथा के लिए लेखकं का महान् आदमी होना जरूरी नहीं । आम आदमी (जिसका जीवन संघर्ष के बीच निर्मित हुआ है), जिसके जीवन-संघर्ष से हमें प्रेरणा मिलती है, द्वारा भी आत्मकथा लिखी जा सकती हे। फिर भी ज्यादातर जीवन में सफल व्यक्तित्व द्वारा ही आत्मकथाएँ लिखी जाती हैं क्योंकि उनके जीवन संघर्ष से हमें प्रेरणा मिलती है। आत्मकथा वही श्रेष्ठ समझी जाती है, जिसमें लेखक अपने जीवल को व्यापक परिवेश के बीच चित्रित करता है। आत्मकथा में जीवन की घटनाओं का संबंध

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक पहलुओं से जुड़ी होनी चाहिए। आत्मकथा लिखने का उद्देश्य क्या है ? कई बार यह प्रश्न किया जाता है। दरअसल आत्मकथा का मूल उद्देश्य आत्मनिर्माण, आत्मपरीक्षण या आत्मसमर्थन होता है। इसमें लेखक अपने आपका मूल्यांकन भी करता है और अपना पक्ष भी प्रस्तुत करता है। कई बार ऐसा होता है कि लेखक को समाज से यह शिकायत होती है कि उसे संपूर्णता में नहीं समझा गया है। अतः लेखक अपने जीवन - संघर्ष के माध्यम से अपना पक्ष समाज के सामने प्रस्तुत करता है।' आत्मकथा लिखने का एक उद्देश्य यह भी है कि लेखक चाहता है कि उसके जीवनानुभव का लाभ अन्य लोग भी उठायें। श्रेष्ठ आत्मकथाएँ इसीलिए आगामी युग में अपने युग तथा समाज के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में पढ़ी जाती हैं। जैसे महात्मा गाँधी की आत्मकथा- सत्य के प्रयोग गाँधीजी के जीवन - संघर्ष के साथ ही उनके युग का भी एक प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है।

आत्मकथा लेखन का एक बड़ा गुण निर्व्येक्तिकता या तटस्थता को माना गया है। श्रेष्ठ आत्मकथा लेखक द्वारा अपने बीते हुए जीवन के तटस्थ सिंहावलोकन का सार्थक प्रयास है। व्यापक जीवन संघर्ष की पृष्ठभूमि में अपने जीवन की सृजनात्मक ऊर्जा की खोज का प्रयास ही आत्मकथा साहित्य है। इसरे शब्दों में कहा जाये तो यह कि सरल भाषा में लेखक द्वारा स्वयं के जीवन की सृजनात्मक अन्वेषण की प्रक्रिया का नाम ही आत्मकथा है। आत्मकथा में लेखक अपने अतीत के जीवन को अपनी रचना का विषय बनाता है। लेकिन इस क्रम में वह घटनाओं को अपनी रचना का विषय नहीं बनाता । वह केवल सृजनात्मक तथ्यों को ही अपनी रचना में प्रस्तुत करता है।

15.3.4 आत्मकथा साहित्य और 'अपनी खबर'

अब तक आपने आधुनिक गद्य विधाओं की उत्पत्ति एवं इतिहास का अध्ययन किया। आधुनिक गद्य विधाओं के संदर्भ में आत्मकथा के अंतर्सम्बन्ध का भी अपले अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त आत्मकथा साहित्य की मूलभूत विशेषता क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर पाने का भी आपने प्रयास किया। आइए अब हम आत्मकथा साहित्य के व्यावहारिक धरातल के आधार पर 'अपनी खबर' आत्मकथा की भूमिका की तलाश करें। 'आत्मकथा ' के लिए कहा जाता है कि यह जीवन के उत्तराई मे लिखी जाये। यानी जीवन का एक बड़ा हिस्सा लेखक ने गुजार दिया हों। वर्ष्य - विषय के रूप में लेखक के जीवन का एक बड़ा हिस्सा आत्मकथा का विषय बने। आत्मकथा में एक क्रमिकता हो, अर्थात् घटनाओं में पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित होता हो।' आत्मकथा' का एक बड़ा गुण उसकी प्रवहमानतर है। आत्मकथाएँ चूँकि पूर्वादीप्ति शैली में लिखी जाती है, इसलिए भी उसमें कथारस के साथ - ही - साथ प्रवाह का गुण अनिवार्य समझा जाता है। आत्मकथा का वर्ण्य-विषय चूँकि लम्बे कालखण्ड तक फैला होता है, इसलिए इसमें लेखक के महत्वपूर्ण में अति महत्वपूर्ण घटनाओं के चुनाव -विवेक की परीक्षा होती है। अतीत की सारी घटनाएँ कभी भी महत्वपूर्ण नहीं होती। हमारे जीवन की वही घटनाएँ हमारे लिए महत्वपूर्ण होती हैं जो हमारे जीवन को महत्वपूर्ण दिशा दे पाने में समर्थ होती है। एक ही घटना किसी व्यक्ति के लिए अलग महत्व रखती है, दूसरे के लिए अलग। यह लेखक के

आलोचनात्मक बोध पर निर्भर करता है कि वह अतीत का मूल्यांकन किन धरातल पर कर रहा है। 'आत्मकथा ' विधा मे कई साहित्यिक विधाओं के गुण हो सकते हैं, लेकिन अपनी मूल संरचना में वह आत्मकथा ही है। एक ओर आत्मकथा में कहानी ओर उपन्यास की तरह कथा रस का होना अनिवार्य है, वहीं दूसरी तरी संस्मरण -रेखाचित्र की तरह काल ओर समय का जीवंत चित्र प्रस्तुत करना भी अनिवर्य है। आत्मकथा भी हो सकता है और डायरी शैली में भी लिखा जा सकता है। वहीं आत्मकथा की सार्थकता उसके आलोचनात्मक मूल्यांकन में निहित होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मकथा कई साहित्यिक विधाओं का स्पर्श करती है, लेकिन अपनी संपूर्ण बुनावट एवं संरचना में वह अपनी अलग विधागत पहचान स्थापित करती है। आत्मकथा के साथ कई बार यह समस्या खड़ी होती है कि इसमें लेखक कई बार सामाजिक न्यायकार, आलोचक, उपदेशक, नीतिकार एवं पथ - प्रदर्शक की भूमिका निभाने लगता है, ऐसे स्थलों पर ज्यादातर आत्मकथाएँ कमजोर होने लगती है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) सत्य/असत्य का चयन कीजिए।

1. आत्मकथा पद्य विधा है। (सत्य/असत्य)
2. आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति रहती है। (सत्य/असत्य)
3. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म वर्ष 1900 ई. है। (सत्य/असत्य)
4. हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा आधुनिक काल में लिखी गई। (सत्य/असत्य)
5. अर्द्धकथानक के लेखक बनारसीदास जैन हैं । (सत्य/असत्य)

(ख) टिप्पणी लिखिए।

1. आत्मकथा साहित्य की दो रचनाएँ।
   1. ....
   2. ....
2. आत्मकथा साहित्य की दो विशेषताएँ।
   1. ....
   2. ....

15. 4 'अपनी खबर': परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई के पिछले बिन्दुओं में आपने आत्मकथा साहित्य के सैद्धान्तिक आधारों का संक्षिप्त अध्ययन प्राप्त कर लिया हैं। आप आत्मकथा की उत्पत्ति के कारणों एवं इतिहास से भी परिचित हो चुके हैं । अब हम पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' का परिचय प्राप्त करेंगे। इसके उपरान्त हम आलोचनात्मक 'आत्मकथा' के पाठ की आलोचना भी करेंगे।

15.4.1 'अपनी खबर': परिचय

'अपनी खबर' हिंदी की चर्चित आत्मकथाओं में से एक है। इसके रचनाकार हिंदी के प्रसिद्ध लेखक 'पाण्डेय बेचन शर्मा' 'उग्र' है। 'उग्र' जी का लेखन अपनी बेबाकी और यर्थाथवादी दृष्टि के कारण प्रसिद्ध रहा है। कुछ लोगों ने इसी कारण इन्हें 'प्राकृतवादी लेखक' भी कहा है। जैसा कि पूर्व में हमने अध्ययन किया कि आत्मकथा की प्रमुख विशेषता उसकी ईमानदारी और तटस्थता होती है इस दृष्टि से यह आत्मकथा हिंदी में विशेष चर्चित रही है। 'अपनी खबर' का प्रकाशन वर्ष 1960 ई. है। लेखक ने साठ वर्ष की आयु के उपरान्त यह आत्मकथा लिखी है, लेकिन आत्मकथा में उसने अपने जीवन के प्रारम्भिक 21 वर्षों को ही रचना का आधार बनाया है। इसका क्या कारण है ? इसका संतोषजनक समाधान देना कठिन है। 'अपनी खबर' की अनुक्रमाणिका में कुल मिलाकर 17 अध्याय है। 'दिग्दर्शन', 'प्रवेश',जीवन - संक्षेप' और 'असम्बल गान' जैसे शीर्षको को हटा दिया जाये तो आत्मकथा की दृष्टि से 13 अध्याय महत्वपूर्ण हैं। पुस्तक अलग - अलग शीर्षको में, अध्यायों में लिखी गई है। 13 प्रमुख अध्यायों में 9 अध्याय प्रमुख व्यक्तियों से संबंधित है। 2 अध्याय 'चुनार' एवं 'बनारस और कलकत्ता' स्थान से संबंधित है। आत्मकथा अपने आप में जीवन - संक्षेप ही है फिर 'जीवन - संक्षेप' नामक 16 वाँ अध्याय लिखने की क्या आवश्यकता थी ? 'अपनी खबर' चूँकि उस प्रकार की आत्मकथा नहीं है जिस प्रकार की आत्मकथा सामान्यतौर पर हुआ करती है, इसलिए लेखक ने अपने व्यक्तित्व के अनुकूल ही उसे अलग रूप (फार्म) में लिखा है। पुस्तक में कुल मिलाकर 17 अध्याय है, जो क्रमवार ढ़ग के इस प्रकार है -

1. दिग्दर्शन
2. प्रवेश
3. अपनी खबर
4. धरती और धान
5. चुनार
6. नागा भगवत दास
7. राममनोहरदास
8. भानुप्रताप तिवारी
9. बच्चा महाराज
10. पं. जगन्नाथ पाँडे
11. लाला भगवान 'दीन'
12. पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर
13. बाबू शिवप्रसाद गुप्त
14. पं. कमलापति त्रिपाठी
15. बनारस और कलकत्ता
16. जीवन संक्षेप

17. असम्बल गान।

15.4.2 'अपनी खबर': पाठ विश्लेषण

आत्मकथा का पहला अध्याय 'दिग्दर्शन' है। व्यापक रूप से अपने को देखने की कोशिश का नाम ही 'दिग्दर्शन' है। तुलसीदास के 'विनय पत्रिका' के दैन्य, ग्लानि की तरह 'उग्र' के जीवन का आत्मविश्लेषण भी कुछ इसी प्रकार का है - 'जब जनमि -जनमि जग, दुख दुखहू दिसि पायो।' तुलसी की तरह 'उग्र' जी की आत्मस्वीकारोक्ति देखें - ''सच कहता हूँ, कौन सा ऐसा नीच नाच होगा जो लघुलोभ ने मुझ बेशरम को न नचाया होगा ! किन्तु ''आप ! ''आह ! लालच से ललचाने के सिवाय 'नाथ ! हाथ कछु नही लग्यो!' पश्चिमी आत्मकथा परम्परा करने में 'आत्मग्लानि' जैसे तत्व के साथ रचना की शुरूआत करने का प्रचलन नहीं है, यह भारतीय रचना परम्परा है, जिसका पालन 'उग्र' जी ने किया है। आत्मकथा लिखने की वास्तविक शुरूआत तब होती हैं जब यह स्पष्ट हो जाये कि आत्मकथा क्यों लिखी जा रही है। इस दृष्टि से प्रवेश जी ने अपनी आत्मकथा लिखने का कारण 'प्रवेश' शीर्षक अध्याय में लिखा है। यह अध्याय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें आत्मकथा लिखने का कारण, आत्मकथा पढ़ते समय सावधानी और आत्मकथा के खतरे का संकेत 'उग्र' जी ने किया है। 'प्रवेश' का प्रारम्भ उस घटना से होता है जिसमें आचार्य नलिन विलाचन शर्मा, जैनेन्द्र कुमार तथा शिवपूजन सहाय 'उग्र जी' के घर आते हैं। यहीं पर शिवपूजन सहाय 'उग्र जी' से अपनी आत्मकथा लिखने को कहते हैं। लेखक को शंका इस बात की होती है कि ''..........बहुतों के बारे मे सत्य प्रकट हो जाये तो उनके यश और जीवन का चिराग ही लुप् - लुप् करने लगे। '' आत्मकथा लिखने का उद्देश्य बताते हुए लेखक लिखता है -''........जिन्हें मैं बहुत निकट से जानता हूँ, ऐसो के बारे में अपने संस्मरण यदि कभी मैंने लिखे तो उसका उद्देश्य भण्डाफोड़ या व्यक्तिगत विद्वेष नहीं होगा। उद्देश्य होगा यह प्रमाणित करना कि कुछ सत्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें कल्पना तक छू नहीं सकती।'' आत्मकथा के खतरे की ओर संकेत करते हुए 'उग्र जी' ने लिखा है - '' अपनी याददाश्त पब्लिक की जानकारी के लिए लिखने में आत्म – प्रशंसा और अंहकार - प्रदर्शन का बड़ा खतरा रहता है। ऐसे संस्मरणों में किसी एक मन्द घटना के कारण अनेक गुण - सम्पन्न पुरूष पर अनावश्यक आँच भी आ सकती है। '' अपनी आत्मकथा को सावधानी से पढ़ने की माँग करते हुए पाठकों से उग्रजी कहते हैं - '' इन संस्मरणों को पढ़ने पर किसी को ऐसा लगे कि मैंने निन्दा या बुराई किसी की है तो मानता होगा कि मुझे ठीक तरह से लिखना आया नहीं । दूसरा तर्क यह है कि आइने में अपना मुँह देख कोई यह कहे कि दर्पण तो उसका निन्दक है, दुष्ट दोस - दर्शक, तो ठीक है। '' 'प्रवेश' का अधिकांश प्रकाशक महोदयों एवं 'निराला' पर केंद्रित है, जिनका पाण्डेय बेचन शर्मा ' उग्र ' जी के जीवन से घनिष्ठ संबंध है। आत्मकथा का तीसरा अध्याय 'अपनी खबर ' है जो पुस्तक का भी शीर्षक है। इसमें लेखक ने अपनी खबर दी भी है 'ली' भी है। अध्याय का प्रारम्भिक अंश जन्म, पारिवारिक स्थिति, 'बेचन' नामकरण के इतिहास, सनातन ब्राह्मण धर्म के पाखण्ड पर केंद्रित है। इसके बाद का अंश पारिवारिक -

सामाजिक व्यभिचार (वेश्या - जुआ) के यर्थाथ चित्रण पर आधारित है। असामयिक पितस कर मृत्यु , भाई का जुआ खेलना - गिरफ्तार होना, परिवार का कर्जदार होना और तत्पश्चात् बड़े भाईयों के साथ रामलीला - मण्डलियों में काम करने का बड़ा जीवन्त दृश्य उग्र जी ने चित्रित किया है ' धरती और धान ' अध्याय पिता वैजनाथ पांडे और माता जयकली के संस्मरण पर आधारित है। जनजमानी वृत्ति वाले पिता,अच्छे तो थे - लेकिन अनबैलेन्स्ड भी कम नहीं थे। सो उन्हें क्षय - रोग हुआ, जिससे असमय में ही उनके जीवन-स्त्रोत का क्षय हो गया। इसी प्रकार माँ के झगड़ालू परिश्रमी , गुणी रूप के स्वरूप को उग्र जी ने स्मरण किया है । माता - पिता के संस्मण के साथ ही घर की आर्थिक स्थिति (दरिद्रता) का बड़ा हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किया है। धर्म का लोप हो रहा था, परिवार टूट रहा था यानी धर्म-टका युग का उदय हो रहा था, इसका संकेत इस अध्याय में किया गया है। 'चुनार' शीर्षक अध्याय में जन्मभूमि के प्रति लेखक का लगाव व्यक्त हुआ है। चुनार की प्राकृतिक रमणीयता का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है "चुनार विन्ध्याचल का आँगन ही तो है। मीठे जीवनप्रद कुएँ , निर्मल नीरपूर्ण तालाब, बावलियाँ, बाग, उपवन, वन, सहस्र - सहस्र वर्षो के इतिहासों के चरण-चिह्न चुनार में चतुर्दिक फैले हुए हैं । .... "चुनार से सटी विन्ध्याचल की सुखद घाटियों में पारिजात के ,पलाश के, बहेड़े के महुवे के वन - के - वन हैं । जब शरद ऋतु में सारी घाटी पारिजात पुष्पों की सुखद सुगन्ध से भर जाती है, लगता है, यही तो नन्दन - वन है। '' प्राकृतिक वर्णन के साथ ही पौराणिक - ऐतिहासिक संकेत की दृष्टि से यह अध्याय महत्वपूर्ण है। जरासन्ध के दुर्ग से विक्रमादित्य , भर्तृहरि के प्रसंग के साथ ही लेखक ने आल्हा - ऊदल के सम्बन्ध को भी जोड़ा है। इस किले से सम्राट हुमायूँ , शेरशाह सूरी, वारेन हेस्टिंग्स , चेतसिंह , पंजाब की महारानी ज़िंदा , वाजिद अली शाह का सम्बन्ध भी जोड़ा जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के युद्धबंदियों को ब्रिटिश सरकार इसी किले मे रखती थी। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों की तो यह मुख्य धुरी है ही। चुनार के दर्शनीय स्थानों में एक दरगाह भी है - मशहूर मुस्लिम बली हजरत कासिम सुलेमानी की। ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रिटिशों की बस्ती (लोअर लाइन्स) 'चर्च का वर्णन विशेष रोचक बन पड़ा है। गोरे सोल्जरों द्वारा ग्रामीण पुरूषों - महिलाओं पर मनमाने अत्याचार का वर्णन रोंगटे खड़े कर देने वाला है। नागा भगवतदास अध्याय के केंद्र में 1910 ई. के आसपास की घटना है। इस अध्याय में पश्चिमी पाकिस्तान (उस समय के पंजाब) के रामलीला मंडली के साथ लेखक के अनुभवों का चित्र है। इसी तरह महन्त राममनोहर दास अध्याय के केंद्र में 1911-12 ई. की घटना है। घटना के केंद्र में अयोध्या की रामलीला मंडली का दृश्य है। रामलीला मंडली में व्याप्त अनैतिकता - व्यभिचार के दृश्यों को , उग्र के प्रथम एकतरफा प्रेम (अभिरामा श्यामा से) का दृश्य भी इसी अध्याय में है।

अगले दो अध्याय भानुप्रताप तिवारी और बच्चा महाराज पर आधारित है। दोनो व्यक्तियों का उग्रजी के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। भानुप्रताप तिवारी की रामायण टीका एवं पुस्तकों के संग्रह का लेखक के आध्यन से गहरा सम्बन्ध रहा है। इसी अध्याय में उग्रजी ने अपने प्रपितामह सुदर्शन पांडे के चमत्कारी कार्यो का भी स्मरण किया है। इसी अध्याय में उग्रजी ने

स्वयं को हरकू-ब्रह्म के कुल का बताया है। पुस्तकों की ओर झुकाव लेखक को भानुप्रताप तिवारी के कारण हुआ हो तो आश्चर्य नहीं। बच्चा महाराज का चरित्र वैसे तो अराधकता और विलासिता का जीता - जागता उदाहरण है, लेकिन उनकी विचित्रता जैसे दुर्गा सप्तशती का पाठ, गीतगोविन्द के पद, विनय पत्रिका के पद, ज्योतिष, तन्त्र और मन्त्रों में उनकी अद्भुत गति ने उग्र जी को उनकी ओर आकृष्ट किया। अगला अध्याय लेखक के चाचा द्वारा गोद लिये जाने एवं पढ़ाई प्रारम्भ से शुरू होता है। चाचा द्वारा आजीविका कर दिये जाने पर चुनार की पढ़ाई बन्द हो गई तो लेखक काशी आकर पढ़ने लगा। आठवीं तक पढ़ने के बाद आर्थिक स्थिति खराब होने से लेखक को पुनः चुनार आना पड़ता है। चुनार से कलकत्ता और फिर कलकत्ते से काशी। लाला भगवान 'दीन' अध्याय लेखक के गुरू परिचय से प्रारम्भ होता है। इस अध्याय के केद्र में है लाला भगवान दीन जो लेखक के दूसरे गुरू माने जाते हैं। इनमें लाला भगवान दीन और अन्य गुरुओं का सान्निध्य में 'उग्र ' की साहित्यिक प्रतिभा के विकास का चित्र है। पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर अध्याय ' आज ' पत्र के माध्यम से उग्र के प्रतिष्ठित होने की कहानी है। इस अध्याय में उग्र जी के शशिमोहन शर्मा और 'अष्टावक्र ' उपनाम की कहानी भी है। इस अध्याय में ही दस आने के हिसाब से मजदूरी मिलने का जिक्र भी है। बाबू शिवप्रसाद गुप्त' अध्याय उन्हीं को समर्पित है। बाबू शिवप्रसाद गुप्त के अतिशय राष्ट्र प्रेम सम्पादक, समाजसेवक एवं सखा यानी कुल मिलाकर देवता तुल्य रूप का बखूबी वर्णन लेखक ने किया है। इस अध्याय में घोषित तौर पर आजकल का अर्थ सन् 1921 तक है, लेकिन पं कमलापति त्रिपाठी अध्याय में यह सीमा सन् 1948-49 तक चली गई है यह अध्याय कमलापति त्रिपाठी के राष्ट्र प्रेमी रूप से मंत्री बनने तक की कहानी है। इस अध्याय से लेखक राष्ट्र पर सत्ता की विजय का संकेत भी करता है अगला अध्याय बनारस और कलकत्ता पर आधारित है बनारसी संस्कृति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है उसके उपरान्त जीवन संक्षेप ओर असम्बद्ध गान से आत्मकथा समाप्त हो जाती है।

15.4.3 अपनी खबर : आलोचनात्मक मूल्यांकन

जैसा कि पूर्व में ही संकेत कर दिया गया था कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का व्यक्तित्व विद्रोही और स्वच्छन्द किस्म का रहा है। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी रचनाओं पर विशेष रूप से पड़ा है। 'अपनी खबर' आत्मकथा भी उपरोक्त तत्वों से संचालित हुई है। आत्मकथा का कलेवर अन्य गद्य विधाओं से भिन्न किस्म का होता है। इसमें लेखक अपनी संपूर्ण जीवन यात्रा को तटस्थ ढंग से विश्लेषित करता है। आत्मकथा में घोषित तौर पर 21 वर्षों का वर्णन है, लेकिन यह वर्णन क्रमवार नहीं है। कहीं-कहीं सन् 1921 के बाद की घटना का भी वर्णन है जैसे कमलापति त्रिपाठी शीर्षक अध्याय। आत्मकथा चूकि लेखक द्वारा खुद के जीवन का क्रमवार आलोचनात्मक मूल्याकन ही होता है, बावजूद इसके एक अध्याय 'जीवन संक्षेप' नामक रखा गया है। आत्मकथा में घटनाओं की क्रमिकता कई बार खंडित होती है। नौ अध्याय अलग-अलग व्यक्तियों से संबधित है। अच्छा होता यदि घटना-क्रम में व्यक्तियों का जिक्र होता। अलग-अलग व्यक्ति पर अध्याय रखने से आत्मकथा की निरन्तरता प्रभावित हुई हैं। 'दिग्दर्शन' और 'असम्बल गान' शीर्षक अध्यायों का भी पूरी आत्मकथा से तारतम्य स्थापित नहीं हो पाता।

अभ्यास प्रश्न 2

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. अर्द्धकथानक रचना का प्रकाशन वर्ष............. है।
2. अर्द्धकथानक.............छंदों में रचित है।
3. अर्द्धकथानक की भाषा ....है।
4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की आत्मकथा का नाम............ है।
5. निजवृत्तान्त आत्मकथा के लेखक.............. हैं।

(ख) सुमेलित कीजिए।

	रचना	रचनाकार
1.	मेरी आत्मकहानी	गुलाबराय
2.	सिंहावलोकन	राहुल सांकृत्यायन
3.	बसेरे से दूर	यशपाल
4.	मेरी असफलताएँ	पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
5.	मेरी जीवन यात्रा	हरिवंशराय बच्चन
6.	अपनी ख़बर	श्यामसुन्दर दास

15.5 अपनी खबर : कृति के रूप में प्रदेय

अपनी खबर की प्रदेयता यह है कि इसने आत्मकथा संबंधी रूप-विधान से अलग रूप-विधान निर्मित जैसा किया है। परश्चाप्य आत्मकथा ज्यादातर अंकों में विभक्त होती है, लेकिन 'अपनी खबर' को लेखक ने विभिन्न शीर्षकों में विभक्त कर दिया। लेखक के इस प्रयोग से आत्मकथा केवन लेखक का निजी दस्तावेज न रहकर सामाजिक दस्तावेज भी बन गई है। कह सकते हैं कि लेचाक के इस प्रयोय से आत्मकथा व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सहयोग का ताना-बाना बुनती है। आत्मकथा में स्कूल घटनाओं की अपेक्षा देश-काल की गति से अपने को तालमेल बैठाने की कोशिश काता नजर आता है लेखक।

15.6 सारांश

'अपनी खबर' आत्मकथा सत्रह अध्यायों में विभक्त है। अध्याय संख्या देखते हुए आत्मकथा की पृष्ठ संख्या (पृष्ठ संख्या 108) काफी कम लगती है। आत्मकथा में लेखक चूंकि अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाओं को ही अपनी रचना का विषय बनाता है। इस दृष्टि से आत्मकथा में शब्द - स्फीति कम ही दिखती है। आत्मकथा 'दिग्दर्शन ' से प्रारम्भ होती है। यह आत्मनिवेदन, आत्मग्लानि का ही प्रतिरूप है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह कि यह आत्ममूल्यांकन का सचेतन प्रयास है। इसके पश्चात 'प्रवेश' के माध्यम से लेखक ने अपनी आत्मकथा लेखन का उद्देश्य स्थिर किया है। इसके पश्चात् 'अपनी खबर ' के माध्यम से उग्र जी ने अपने जन्मकाल,

पारिवारिक, स्थिति और तत्कालीन समाज का यर्थाथवादी चित्र खींचा है। आगे का अध्याय जन्मभूमि चुनार की प्राकृतिक शोभा एवं उसके पौराणिक-ऐतिहासिक महत्व पर केंद्रित है। क्रमश: बीच - बीच में उग्र जी अपने पारिवारिक चित्र भी प्रस्तुत करते जाते हैं। प्रारम्भिक जीवन काल के पश्चात उग्र जी का साहित्यिक एवं सामाजिक जीवन प्रारम्भ होता है। आठवां एवं नवां अध्याय विभिन्न व्यक्तियों पर आधरित है। उन व्यक्तियों के माध्यम से लेखक ने अपने जीवन के विकास क्रम भी दर्शाया है, जाहिर है सामाजिक विकास क्रम भी साथ - साथ है। पूरी आत्मकथा मोटे तौर पर उग्र जी के जीवन के प्रारम्भिक हिस्सों को अपने में समेटती है। सीमित कालावधि के चित्रण के उपरान्त भी आत्मकथा अपने गठन में सफल है।

15.7 शब्दावली

स्तुति – श्रद्धेय की प्रशंसा, अर्चना करना।
श्रम-परिहार – काम की थकान को दूर करना
सृजनात्मक – रचनात्मक कार्य।
खंगालना – अच्छी तरह देखना।
अन्वेषण – खोज
सत्यान्वेषण – सत्य के प्रति अन्वेषण करना।
आत्मानुभूति – अपनी अनूभूति का ज्ञान
आत्मप्रकाशन – अपने गुणों का प्रकाशन करना
प्रवहमानता – समाज के सकारात्मक बढ़ाव की प्रवृत्ति
पूर्वदीप्ति शैली – अतीत की घटनाओं को स्मृति के आधार पर पुन: रचित करने की शैली।
प्राकृतवाद – मन के अवचेतन के सत्य का उद्घाटन, अतियर्थाथवाद।
लुप-लुप करना – दीये/जिन्दगी के बुझने का संकेत।
व्यभिचार – वासना की अतिरंजना
चतुर्दिक – चारों ओर
अनैतिकता – गलत आचरण
विद्रोह – रूढ़ियों के प्रति विरोध की भावना।
स्वच्छन्द – निर्बन्ध

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य

4. असत्य
5. सत्य

(क) (1)

1. अपनी ख़बर
2. क्या भूलूँ क्या याद करूँ

(2) 1. आत्मप्रकाशन
2. आत्मपरीक्षण

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर

(क)

1. 1641 ई.
2. 675
3. ब्रजभाषा
4. कुछ आप बीती कुछ जग बीती
5. अम्बिका दत्त व्यास

(ख)

1. श्यामसुन्दर दास
2. यशपाल
3. हरिवंशराय बच्चन
4. गुलाबराय
5. राहुल सांकृत्यायन
6. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी प्रकाशन, बनारस
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सिहं, बच्चन, लोकभारती प्रकाशन,नई दिल्ली
3. हिन्दी भाषा और संवेदना का विकास - चतुर्वेदी,रामस्वरूप , लोकभारती प्रकाशन ,इलाहाबाद
4. अपनी खबर - उग्र, पाण्डेय बेचन शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1,2 - वर्मा धीरेन्द्र, ज्ञानमण्डल प्रकाशन, काशी

15.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी, रामचन्द्र - हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी प्रकाशन, बनारस
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सिहं, बच्चन, लोकभारती प्रकाशन,नई दिल्ली

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आत्मकथा से आप क्या समझते हैं ? आत्मकथा विधा एवं साहित्य की विशेषताएँ बताइए।
2. 'अपनी खबर' का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 16 जीवनी - निराला : परिचय,पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 जीवनी साहित्य : इतिहास एवं विशेषता

16.3.1 रामविलास शर्मा : जीवन परिचय एवं साहित्य

16.3.2 जीवनी साहित्य का इतिहास

16.3.3 जीवनी साहित्य की विशेषता

16.4 'निराला' : परिचय, पाठ एवं आलोचना

16.4.1 'निराला' : रचना परिचय

16.4.2 'निराला' : पाठ विश्लेषण

16.4.3 'निराला' : आलोचनात्मक मूल्यांकन

16.5 सारांश

16.6 शब्दावली

16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

16.10 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

स्नातक प्रथम वर्ष का द्वितीय प्रश्न पत्र गद्य साहित्य की अन्य विधाओं पर केंद्रित है। इस प्रश्न पत्र में मुख्यत: आधुनिक गद्य विधाओं का विवेचन किया गया है। अब तक आपने अन्य गद्य विधाओं की उत्पत्ति, वर्गीकरण एवं भेद का अध्ययन कर लिया है। यह इकाई 'निराला' शीर्षक जीवनी के प्रयोगिक पाठ से संबंधित है।

जीवनी साहित्य आधुनिक युग की गद्य विधा है। हालांकि मध्यकाल के 'भक्तमाल' जैसे ग्रंथ जीवनी साहित्य के ही अंग हैं, लेकिन उनमें जीवनी साहित्य की आधुनिक विशेषताओं का नितान्त अभाव है। जीवनी साहित्य का प्रारम्भ समाज की संक्रान्तिकालीन परिस्थितियों में ज्यादा होता है। जीवनी साहित्य का विषय महत्वपूर्ण व्यक्तित्व बनता है, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। जीवनी विधा एक व्यक्तित्व को केंद्रित करके भी पूरे समाज का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाती है। इस दृष्टि से इस विधा की अपनी उपयोगिता है। 'निराला' निराला के व्यक्तित्व पर केंद्रित करके लिखी गई है। इस रचना के लेखक रामविलास शर्मा हैं, जो स्वयं ही बड़े साहित्यकार हैं। जीवनी के मूल पाठ के आलोचनात्मक अध्ययन के माध्यम से हम निराला के व्यक्तित्व एवं रामविलास शर्मा की अभिव्यक्ति शैली का परीक्षण करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- निराला के प्रामाणिक जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- रामविलास शर्मा के कृतित्व एवं उनके लेखन शैली से परिचित हो सकेंगे।
- जीवनी साहित्य के इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- जीवनी साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

16.3 जीवनी साहित्य : इतिहास एवं विशेषता

जीवनी विधा आधुनिक कालीन संक्रमणशील युग की उपज है। जब-जब समाज में व्यक्तित्व का अभाव एवं जड़ता आती जायेगी, तब-तब जीवनी साहित्य की प्रासंगिकता बनी रहेगी। आगे के बिन्दुओं में हम जीवनी साहित्य की पृष्ठभूमि, इतिहास एवं विशेषता से परिचित होंगे। उसके पूर्व आइए, हम 'निराला' नामक जीवनी के लेखक एंव प्रसिद्ध साहित्यकार राम विलास शर्मा के जीवन एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

16.3.1 रामविलास शर्मा : जीवनी, परिचय एवं साहित्य

रामविलास शर्मा हिंदी प्रगतिशील परम्परा के प्रसिद्ध आलोचक हैं। आपका जन्म 1912 ईसवीं में तथा मृत्यु 2000 ई. में हुई। अपने विचारोत्तेक आलोचना के कारण आपने हिंदी समीक्षा को नई दिशा प्रदान की। लेकिन आप केवल आलोचक नहीं हैं वरन् इसी के साथ ही

विचारक, भाषा चिंतन जीवनीकार, आत्मकथाकार एवं कवि भी हैं। रामविलास शर्मा उन थोड़े से हिंदी लेखकों में से हैं जिन्होंने हिंदी आलोचना को ऐतिहासिक बोध एवं सास्कृतिक गरिमा प्रदान की है।

रामविलास शर्मा जी का जन्म उन्नाव, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा झांसी से तथा उच्च शिक्षा लखनऊ से हुई। आपने अंग्रेजी विषय में एम0ए0 तथा पी0एच0डी0 की उपाधि धारण की। आपके शोध का विषय – रोमैंटिक कवि कीट्स से संबंधित है। आपके अध्यापन की शुरूआत लखनऊ विश्वविद्यालय से हुई। उसके उपरान्त शर्मा जी बलवन्त कॉलेज, आगरा में अध्यापन का कार्य किया। आगरा के के.एम. हिंदी संस्थान, आगरा में आपने निदेशन का दायित्व भी संभाला। रामविलास शर्मा उन थोड़े से लोगों में से हैं जिन्होंने अंग्रेजी विषय को छोड़कर हिंदी भाषा एवं भारतीय संस्कृति को अपना जीवन समर्पित किया।

रामविलास शर्मा की पहली आलोचना कबीर पर 1934 ई. में प्रकाशित हुई थी। उसके उपरान्त निराला पर 1939 में आपकी दूसरी आलोचना प्रकाशित हुई। हिंदी में आपने सर्वाधिक लिखा है और उच्चस्तर का लिखा है। रामविलास शर्मा जी की अब तक शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने हिंदी की गतिशील परम्परा को पकड़ने की कोशिश की है। यहाँ हम रामविलास जी की कुछ प्रमुख पुस्तकों को प्रस्तुत कर रहे हैं –

- प्रेमचंद – (1941 ई.)
- भारतेन्दु-युग – (1943 ई.)
- निराला – (1946 ई.)
- प्रगति और परम्परा – (1949 ई.)
- साहित्य और संस्कृति – (1954 ई.)
- प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ – (1954 ई.)
- प्रेमचंद और उनका युग – (1952 ई.)
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र – (1953 ई.)
- साहित्य और संस्कृति – (1954 ई.)
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना – (1955 ई.)
- लोकजीवन और साहित्य – (1955 ई.)
- स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य – (1956 ई.)
- आस्था और सौन्दर्य – (1961 ई.)
- भाषा और समाज – (1961 ई.)
- भारत की भाषा समस्या – (1965 ई.)

- साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन – (1968 ई.)
- निराला की साहित्य साधना I – (1969 ई.)
- निराला की साहित्य साधना II – (1970 ई.)
- भारतेन्दु युग और हिंदी –साहित्य की विकास परम्परा – (1975 ई.)
- निराला की साहित्य साधना III – (1976 ई.)
- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण – (1977 ई.)
- नई कविता ओर अस्तित्ववाद – (1978 ई.)
- भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी – (तीन खंड, 1979, 80,81)
- परम्परा का मूल्यांकन – (1981 ई.)
- भाषा युगबोध और कविता – (1981 ई.)
- भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद – (दो खंड 1982 ई.)
- कथा विवेचन और गद्य शिल्प – (1982 ई.)
- मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य – (1984 ई.)
- लोकजागरण और हिंदी साहित्य – (1985 ई., संपादित)
- हिंदी जाति का साहित्य – (1986 ई.)
- भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ – (1986 ई.)
- मार्क्स और पिछड़े हुए समाज- (1986 ई.)
- पंचरत्न – 1980 (रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, पत्र का संग्रह)
- घर की बात – 1983 (आत्मकथा)
- तार सप्तक – 1983 (कविताएँ संकलित)
- गांधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ
- भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश
- पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद
- भारतीय साहित्य और हिंदी जाति के साहित्य की अवधारणा

16.3.2 जीवनी साहित्य का इतिहास

जीवनी साहित्य का इतिहास मध्यकालीन बहि:साक्ष्य के रूप में हमारे सामने मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी बाबा बेनी माधव दास की गुसाई चरित और रघुवरदास की

तुलसी चरित मिलती है। इस दिशा में पहला व्यवस्थित प्रयास नाभादास के 'भक्तमाल' में मिलता है। जिसमें 252 भक्तों का जीवन वृत्तात संकलित है। इस दिशा में महत्वपूर्ण पुस्तक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' है। किन्तु इन ग्रंथों में वैज्ञानिक दृष्टि का पूर्ण अभाव है। हिंदी में आधुनिक ढंग की जीवनियाँ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई। गोपाल शर्मा शास्त्री द्वारा लिखित दयानन्द दिग्विजय (1881 ई.), चिम्मनलाल वैश्य कृत 'स्वामी दयानन्द'। 1893 ई. में कार्तिक प्रसाद खत्री ने मीराबाई का जीवन-चरित्र लिखा। इसी परम्परा में बाबू राधाकृष्ण दास कृत 'भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र' (1904 ई.) बाबू शिवनंदन सहाय कृत 'हरिशचन्द्र' (1905 ई.) महत्वपूर्ण जीवनियाँ हैं। राजनीतिक व्यक्तित्व के ऊपर लिखी जीवनियों में गंगाप्रसाद गुप्त कृत दादाभाई नौरोजी (1906 ई.) संपूर्णानंद कृत 'धर्मवीर गांधी' (1914 ई.), राजेन्द्र प्रसाद लिखित 'चम्पारन में महात्मा गाँधी' (1919 ई.), मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'चन्द्रशेखर आजाद' एवं सीताराम चतुर्वेदी कृत 'महामना मालवीय' (1938 ई.) प्रमुख जीवनी है। विदेशी महापुरूषों पर भी कुछ उल्लेखनीय जीवनी लिखी गई है। रामवृक्ष बेनीपुरी कृत कार्ल मार्क्स (1951 ई.) राहुल सांकृत्यायन कृत 'माउप्से तुंग' (1954 ई.), कार्ल मार्क्स (1954 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं। हिंदी में वैसे तो समृद्ध जीवनी साहित्य का अभाव है, किन्तु इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। हिंदी में प्रेमचन्द पर तीन जीवनी लिखी गई है। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर में' (1944) नाम से जीवनी लिखी है वहीं उनके पुत्र अमृत राय ने 'कलम का सिपाही' (1962 ई.) नाम से अच्छी जीवनी लिखी है। तीसरी जीवनी मदन गोपाल ने 'कलम का मजदूर' (1964 ई.) नाम से लिखी है। डा. भगवतीप्रसाद सिंह ने कविराज गोपीनाथ की जीवनी- मनीषी की लोकयात्रा शीर्षक से लिखा है। इस दिशा में हिंदी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण काम रामविलास शर्मा ने किया है। रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' नाम से निराला के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को तीन खण्डों में प्रस्तुत किया है। यह जीवनी जहाँ निराला काव्य को समझने में हमारी मदद करती है वहीं दूसरी ओर छायावादी आन्दोलन एवं तत्कालीन सामाजिक-साहित्यिक परिवेश को समझने में हमारी मदद भी करती है। विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित 'आवारा मसीहा' (1974 ई.) हिंदी की श्रेष्ठ जीवनी में से एक है। विष्णु प्रभाकर जी ने बंगला उपन्यासकार शरतचन्द्र के जीवन को सृजनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। शांति जोशी ने सुमित्रानंदन पंत की जीवनी 'सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य' शीर्षक से दो खण्डों में लिखा है। (प्रकाशित 1970, 1977 ई.) शिवसागर मिश्र ने 'दिनकर एक सहज पुरूष' (1981 ई.) शीर्षक दिनकर की सुन्दर जीवनी लिखी है। शोभाकान्त मिश्र कृत 'बाबू जी' (1991 ई.) नागार्जुन के ऊपर लिखी गई जीवनी है। श्री विष्णुचन्द्र शर्मा की 'अग्निसेतु' (1976 ई.) शीर्षक से नजरूल इस्लाम की जीवनी 'जिन्होंने जीना जाना' (1971 ई.) इस दिशा में एक नया प्रयोग है। इसमें सात साहित्यकारों, को राजनेताओं, एक विचारक, एक कलाकार और एक अभिनेत्री का जीवन प्रस्तुत किया गया है।

16.3.3 जीवनी साहित्य की विशेषता

सामान्यत: जीवनी साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा जाता है कि – यह एक लेखक द्वारा महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के जीवन को सृजनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने वाली गद्य विधा है। यानी इसमें दो पक्ष अनिवार्य हैं – एक लेखक और दूसरे जीवनी का विषय अर्थात् महत्वपूर्ण व्यक्तित्व। जीवनी लेखक के लिए दूसरे का जीवन अनिवार्य होता है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि जीवनी विधा की आवश्यकता क्यों पड़ती है ? अर्थात् वह कौन सी परिस्थितियाँ हैं जो किसी लेखक को जीवनी लिखने के लिए बाध्य करती हैं । आपने जीवनी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हुए देखा कि यह आधुनिक गद्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित है, जबकि चरित काव्य या जीवनी लेखन के स्फुट प्रयत्न पहले से भी होते रहे हैं। फिर पुराने चरित काव्य या वार्ता ग्रंथ या जीवनी लेखन से आधुनिक जीवनी साहित्य का मुख्य भेद क्या है ? पुराने चरित काव्य वस्तुत: धार्मिक प्रेरणावश या स्तुति रूप में लिखे गये हैं जबकि जीवनी साहित्य की पहली शर्त यह है कि यह वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से युक्त होकर लिखी जाए। यह प्रश्न कि जीवनी साहित्य क्यों लिखा जाता है ? इसका तात्कालिक उत्तर यही हो सकता है कि जब-जब समाज के सामने संक्रमणशील स्थितियाँ होंगी, जब-जब सामज में व्यक्तित्व का अभाव होगा, तब-तब जीवनी लेखन की आवश्यकता बढ़ती जायेगी। जीवनी अपने मूल रूप में व्यक्तित्व निर्माण की ही विधा है। अकारण नहीं कि राष्ट्रीय पराधीनता के समय में सर्वाधिक जीवनी लेखन का कार्य हुआ। वैसे जीवनी लेखन की प्रासंगिकता हमेशा ही वर्तमान रहती है, क्योंकि समाज को हमेशा ही आदर्श व्यक्तित्व की आवश्यकता महसूस होती है। आइए अब हम यह देखें कि एक जीवनीकार के लिए जीवनी लिखने की शर्तें क्या हैं ? जीवनी साहित्य की सैद्धान्तिकी पर चर्चा करते हुए शिप्ले ने लिखा है – जीवनी को नायक के सम्पूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा करनी चाहिए और अपने आदर्शरूप में यह विशिष्ट इतिहास होना चाहिए। यहाँ विशिष्ट इतिहास का तात्पर्य यह है कि नायक के जीवन-संघर्ष के चित्रण करने के क्रम में जीवनीकार तत्कालीन युग-परिस्थिति का भी प्रामाणिक वृत्त प्रस्तुत करे। जीवनी –साहित्य के विभिन्न भेद भी किए गए हैं। आत्मीय जीवनी, लोकप्रिय जीवनी, विद्वतापूर्ण जीवनी, मनोवैज्ञानिक जीवनी, व्याख्यात्मक जीवनी, कलात्मक जीवनी तथा व्यंग्यात्मक जीवनी। किन्तु शिप्ले इन्हें एक ही वर्ग में समाहित कर देता है। जीवनी के लिए यह आवश्यक है कि जीवनीकार नायक के चरित्र का विकास तत्कालीन परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के बीच दिखाये। जीवन-समाज के संघर्षों से अछूती जीवनी महान् जीवनी नहीं बन सकती।

जीवनी की सामग्री के स्रोत कैसे विकसित करें। इस संबंध में कैसेल ने कुछ बिन्दु निर्धारित किए हैं – (क) उसी विषय अथवा सम्बद्ध विषयों पर लिखी गई पुस्तकें, (ख) मूल सामग्री, यथा-पत्र, डायरी या प्रामाणिक गवेषणा-सामग्री, (ग) समकालीनों के संस्मरण, (घ) यदि वर्ण्य विषय बहुत पहले का नहीं है तो जीवित व्यक्तियों की यादगारें, (ड़.) जीवनी-लेखक यदि अपने चरितनायक के सम्पर्क में रहा है तो उसके अपने संस्मरण और (च) उन स्थलों का भ्रमण तथा पर्यवेक्षण जहाँ चरित-नायक रहा था। (हिंदी साहित्य कोश, भाग एक, पृष्ठ-260) कैसेल द्वारा जीवनी साहित्य के लेखन के लिए उपर्युक्त सामग्री-स्तोत का विवरण महत्वपूर्ण है। लेकिन

इस संबंध में हमें यह ध्यान रखना होगा कि हर जीवनी के स्रोत भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इस संबंध में किसी सैद्धान्तिकी को हर जीवनी पर लागू करना उचित नहीं है।

जब भी कोई लेखक जीवनी लेखन की दिशा में प्रवृत्त होता है तब सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की होती है कि वह जिस पर जीवनी लिख रहा है, उसके बारे में संपूर्ण तथ्यात्मक सूचनाओं का संग्रह करें। वह जो तथ्य, विवरण इकट्ठा कर रहा है, वह प्रामाणिक है कि नहीं, इस पर जीवनी की प्रामाणिकता निर्भर करती है। इस संबंध में यह प्रश्न उठाया गया है कि प्रामाणिक जीवनी के लिए लेखक का आलोच्य व्यक्तित्व को समकालीन होना अनिवार्य है! जीवनी की प्रामाणिकता के लिए यह अच्छा है कि जीवनीकार अपने वर्ण्य विषय व्यक्तित्व का समकालीन हो, लेकिन यह अनिवार्य नहीं है। कोई लेखक इतिहास की छानबीन करके, तथ्य संग्रह करके एवं सहानुभूतिपूर्वक किसी व्यक्तित्व पर अच्छी जीवनी लिख सकता है। जीवनी लेखन का सबसे बड़ा लाभ या उपयोगिता यह है कि किसी महत्वपूर्ण व्यक्तित्व/क्रतित्व से आगे आने वाली पीढ़ी लाभान्वित हो सके और उसका लाभ उठा सके। जीवनी के संबंध में यह प्रश्न भी उठाया गया है कि चर्चित व्यक्तित्व ही केवल जीवनी के विषय क्यों बनते हैं। इस तर्क के पीछे कारण यह है कि सफल व्यक्तित्व का अनुकरण प्राय: लोग करते हैं, लेकिन यह हो सकता है कि सामाजिक रूप से कम सफल व्यक्तित्व का जीवन-संघर्ष भी महान हो और वह हमें प्रेरणा दे सकने की क्षमता रखता हो, ऐसी स्थिति में जीवनीकार किसी भी व्यक्तित्व को अपने लेखन का विषय बना सकता है। शर्तें यह है कि आलोच्य व्यक्तित्व का जीवन संघर्ष प्रेरणादायक हो। जीवनी लेखन के लिए सावधानी यह होनी चाहिए कि जीवनीकार किसी गलत तथ्य को न प्रस्तुत करे। जीवनी में तथ्य का बहुत महत्व है। गलत तथ्य से युक्त जीवनी प्रामाणिक नहीं हो सकती । जीवनी लेखन में वस्तुनिष्ठता का गुण अनिवार्य होना चाहिए। जीवनीकार को अपने नायक को महान सिद्ध करने का अनावश्यक प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अपने नायक के अंतर्विरोधों को वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रस्तुत करना ही जीवनी की सफलता है। जीवनी के लिए यह भी आवश्यक माना गया है कि उसमें क्रमबद्धता हो। पूरे जीवनी में घटनाओं की क्रमिकता बरकरार रहे। एक घटना से दूसरे घटना का क्रमानुसारी संबंध स्थापित होता हो। कोई घटना बिना कार्य-कारण सम्बन्ध के जीवनी में न आई हो। जीवनीकार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने नायक को संपूर्णता में चित्रित करे, लेकिन उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जीवनी में अति-महत्वपूर्ण घटनाओं को ही समावेशित करना चाहिए। जीवन का हर क्षण, हर घटना महत्वपूर्ण नहीं होते, सृजनात्मक नहीं होते। इस दृष्टि से विशेष का चयन जीवनी को सघन एवं महत्वपूर्ण बनाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. निराला का जन्म वर्ष...............है।
2. 'निराला' पुस्तक के लेखक............है।

3. निराला की पुत्री का नाम............था।
4. निराला का जन्म...........में हुआ था।
5. निराला के जीवन पर प्रकाश डालने वाले लेखक...............हैं।

(ख)टिप्पणी लिखिए

1. जीवनी साहित्य

....
....
....
....
....

2. निराला

....
....
....
....
....

3. रामविलास शर्मा

....
....
....
....

16.4 मूल पाठ

भरे-पूरे परिवार में निरालाजी का जन्म हुआ था। माता थीं, पिता थे, चाचा थे, सभी कुछ था। अबध में अपना गाँव छोड़करयह परिवार बंगाल की एक रियासत में जा बसा था। हिन्दुस्तान की दूसरी रियासतों की तरह बंगाल की शस्य–श्यामला भूमि पर महिषादल का भी एक राज्य था। वन प्रकृति, आम, नारियल, कटहल, बाँस के पेड़, तालाब, नदियाँ, बेला, जुही, हरसिंगार, सब कुछ था; लेकिन जनता भूखी थी। यहीं पर संवत् 1953 की बसंतपंचमी को पण्डित रामसहाय त्रिपाठी के घर बालक सूर्यकुमार का जन्म हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में बालक के जीवन में एक कभी न पूरा होने वाला अभाव छोड़कर माता स्वर्ग चली गई। कवि को "अनगिनत आ गये शरण में जन -जननी" से उस अभाव की पूर्ति करनी पड़ी। पिता पंडित राम-सहायअवध के सीधे-साधे किसान थे, जो सिपाही बन गये थे। स्वभाव की रूक्षता पहले से कुछ

और बढ़ गई थी। यद्यपि अभी उनकी वैसी अवस्था न थी, फिर भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। पत्नी की मृत्यु के उपरान्त वे सत्रह साल तक और जीवित रहे और इन्फ्लुएंजा से उनकी आकाल मृत्यु हुई।

यह आशा की जा सकती थी कि पत्नी के अभाव में वे अपना सारा स्नेह अपनी एकमात्र संतान पर उड़ेल देंगे। यह सम्भावना भी थी कि बहुत लाड़ प्यार से वे अपने प्यारे इकलौते बेटे को बिगाड़ देंगे। परन्तु ऐसे भय या आशंका का कोई कारण न रहा। एक बार हाजत रफा करने के बाद बालक ने यूरोपवासियों की तरह आधुनिक ढंग से वैंगन के पत्ते से कागज का काम लिया। ज्योंही तनवृत्त होकर रसोईघर में जाना चाहता था कि भाभी ने रोक लिया और झरोखे से जो कुछ देखा था, उसे पिताजीसे निवेदन कर दिया। पिताजी ने गरजकर डाट बताई, लेकिन इतना काफीनहींथा। बालक को टाँग पकड़कर उठा लियाऔर तालाब तक ले जाकर अपने हाथ से कई बार डुबकियाँ लगवाईं जैसे किसी गन्दी चीज को साफ कर रहे हों। इस तरह बालक की अपवित्रता निवारण करके अब उसे निकट से छने योग्य समझकर उन्होंने उसे वास्त्विक दंड देना शुरू किया। दूसरी बार बालक के पिता सुझाया- तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते। पिता ने साचा कि यह भी किसी दुश्मन का जाल है जो इस तरह भेद लेना चाहता है। पुत्र से वह रहस्य जानने की चेष्टा करने लगे और चिरंजीव इस सूझ के लिए अपनी मौलिक प्रतिभा की दुहाई देने लगे। परन्तु पिता को विश्वास न हुआ; जब बालक बेसुध हो गया, तभी ताड़न-क्रिया बन्द हुई।

तीसरी बार अपने गाँव में वेश्या के लड़कों के हाथ से पानी पीने के कारण फिर वही दशा हुई। "मारते वक्त पिताजी इतने तनमय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूमहो गई थी। "

मातृहीन भावुक-हृदय बालक पर इस व्यवहार का क्या प्रभाव पड़ा होगा, पाठक सहज ही कल्पना कर सकते हैं। घर के बाहर भी उसकाजीवन सुखी नहीं था। तुलसीदास की रामायण पढ़कर उसने हनुमान की उपासना करना सीखा था। सरोवर से लाल कमल लाकर वह उनका सिंगार करता था। उस वीर भावना के साथ ऊँच-नीच और छोटे-बढ़े के विचार का मेल न खाता था। राज्य में कायस्थ, ब्राह्मण, कुलीन और अकुलीन का प्रश्न राष्ट्रीय समस्या की तरह हल न हो पाता था। स्वामी प्रेमानन्दजी के महिषादल पधारने पर ब्राह्मण और कायस्थ एक ही पाँति में भेजन पाने बैठे। कायस्थों को गर्व हुआ कि उन्हीं की जाति के सन्यासी का अब इतना आदर हो रहा है। इस पर विप्र वर्ग का भी ब्रह्मतेज जागा। एक ब्राह्मण ने नवयुवक की आर इंगित करके अपमानजनक शब्द कहे। जब स्वामीजी गढ़ का मन्दिर देखने गये, तब भी युवक को उनके साथ जाने से रोका गया। एक ब्रह्मण ने बड़े मार्के की बात कही, "देवता राजा के हैं, किसी प्रजा के नहीं। " इस तरह की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बालक से पाये हुए उद्वत स्वभाव के कारण अपने जीवन के सभी काम निर्भीक भाव से करता रहा। स्कूल की शिक्षा नवीं कक्षा तक मिली,

फिर अनेक प्रतिभाशाली साहित्यकारों की तरह उसनेसकूल को नमस्कार किया। खेल-कूद से उसे काफी दिलचस्पी थी और क्रिकेट और फुटबाल का अच्छा खिलाड़ी था। सहपाठियों में उसके जीवन का अकेलापन बहुत कुछ दूर हो जाता था। संगीत की भी उसे शिक्षा मिली और 'चोटीकी पकड़' का 'बिन्दा कहत करो हमसों न रार'' तभी से उसके कंठ में बैठा हुआ है। राजा साहब के बड़ हारमोनियम पर युवक कभी-कभी गाता भी था।

सम्पूर्ण बाल्यकाल महिषादल में नहीं बीता। जब तब वह अपने गाँव भी आया करता था। कानपुर-रायबरेली लाइन पर बीघापुर स्टेशन से लगभग दो कोष पर गढ़ाकोला गाँव बसा हुआ है। लोन नदी को पार करने पर गाँव के कच्चे घर दिखाई पड़ने लगते हैं। और घरोंकी तरह चौपाल, छप्पर,दहलीज, आँगन, खमसार और अटारी के नक्शे पर पण्डित रामसहाय का मकान भी बना हुआ है। अवध का यह भाग बैस ठाकुरों की बस्ती के कारण बैसवाड़ा कहलाता है। ताल, छोटी नदियाँ और नाले, घनी अमराइयाँ यहाँ की शोभा हैं। इसे हम अवध का हृदय कह सकते हैं। अवधी का सबसे मधुर रूप यहीं बोला जाता
है। इस भाषा में ओज और कोमलता दोनों का ही विचित्र सम्मिश्रण है। यहाँ के किसान परिश्रमी, ताल्लुकदार सरकारी पिट्ठू, वाले, विप्र वर्ग दंभी और निम्न जातियाँ बहुत ही सताई हुई हैं, परन्तु शिक्षाऔर व्यवसाय में उन्होंने विशेष उन्नति नहीं की। कुछ दिन पहले हर गाँव में दो-चार परिवार ऐसे निकल आते थे जिनके लोग फौज में सिपाही, हवलदार या सूबेदार तक होते थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ी या गलमुच्छे रखनेवाला पेन्शनभोगी यह वर्ग अब मिट-सा गया है।

बालक सूर्यकुमार ने पितासे अच्छी काठी पाई थी। चौदह वर्ष की अवस्था ही में कसरत-कुश्ती का शौकीन वह एक अच्छा युवक बन गया। बैसवाड़े में, देश के बहुत से अन्य भागों की तरह, बचपन में ब्याह करना एक गौरव की बात समझी जाती है। अल्प अवस्था में सूर्यकुमार का भी विवाह हो गया। सासुजी ने लड़के को बुलाकर देख लिया, मन बैठा लिया और बात पक्की कर ली। परन्तु यह जानकर कि उनकी बिटिया को दूर परदेश जाना पड़ेगा, उन्होंने यह शर्त रक्खी कि छः महीने वह सासरे रहेगी ओर छः महीने मायके। श्वसुर उन्हें परदेश भी न ले जायेंगे।

विवाह वर के योग्य हुआ। स्वर्गीया मनोहरा देवी रूपवती और गुणवती दोनों थीं। रंग कति का-सा था, यानी खुलता गेहुँआ, मुँह लम्बा-सा, घने लम्बे केश, गाने में अत्यन्त निपुण, सौ-डेढ़ सौ स्त्रियों में धाक जमाने वाली, विवाह के समय साहित्य में कवि से अधिक योग्य। गौने से कवि का रोमांस शुरू हुआ । अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए महिषादलआना पड़ा लेकिन "वामा वह पथ में हुई वाम सरितोपम" – शिक्षा का क्रम आगे न चल सका। कुछ दिन तक डलमऊ रहे। दूध-बादान में सास का दिवाला निकालते-निकालते छोड़ा। रूह की मालिश कराई, कुल्ली की संगति की। गंगा के किनारे एक हाथ से कैथे फेंककर और दूसरे से लोकते हुए क्रिकेट का शौक पूरा करते थे। वैवाहिक जीवन का सुख अधिक दिन तक नहीं बदा था । श्रीमती मनोहरा देवी ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म देकर इन्फ्लुएंजा की बीमारी में शरीर त्याग किया। उस समय युवक पति महिषादल में था । पत्नी की मृत्यु मायके में, माँ की गोद में हुई। सब

कुछ समाप्त होने के बाद सूर्यकुमार भी वहाँ आ पहुँचा। इस बज्रपात से उसकाबुरा हाल था। घंटों श्मशान में बैठा रहता। कहीं कोई चूड़ी का टुकड़ा, हड्डी या राख मिल जाती, तो उसे हृदय से लगाये घूमा करता। इन्फ्लुएंजा में इतने मनुष्य नष्ट हुए थे कि गंगा के किनारे दिन-रात चिताओं की जोत कभी मन्द न होती थी। अवधूत टीने पर बैठा युवक कवि घंटों तक बहती हुई लाशों का दृश्य देखा करता।

डलमऊ को अगर एक मनहूस जगह कहा जाय तो बेजा न होगा। जीवन से अधिक यह मृत्यु का स्थान है। किसी समय वह व्यापार की मण्डी था। पृथ्वीराज और जयचन्द के समय इसका राजनीतिक महत्व भी था। भर राजाओं के विशाल किले के ध्वंसावशेष उसके ऐतिहासिक गौरव के साक्षी है। आज भी कतकी के दिनों में बड़े-बड़े आम और इमली के बगाइच जन-समूह से भर जातेहैं। धनुषाकार गंगा नगर को घेरे हुए है। अनेक स्थानों से नही का चौड़ा फाट, दूसरी ओर की बनराजि और किले से कोसों तक फैले हुए मैदानों का दृश्य दिखाई देता है। परन्तु अब नदी पर धनी व्यापारियों के बजरों की भीड़ नहीं होती। व्यवसाय नष्ट हो गया है। मकान खण्डहर हो गये हैं। जगह-जगह कच्ची मिट्टी के स्तूप-से बन गये हैं जिनमें जहाँ-तहाँ मानों बिलों में प्रवेश करके मनुष्य नामधारी जीव जीवन-व्यापार में लगे रहते हैं। नगर में अधिकतर गंगा-पुत्रों की बस्ती है। घाट की जमींदारी में ज्यादा गुंजायश न होने से बहुत से लोग नगर छोड़कर बाहर जा रहे हैं। धर्म-भीरू किसान यात्रियों से पैसा झटकना, फुर्सत में जुआ खेलना, दलबन्दी करके गंगा के किनारे लम्बी-लम्बी लाठियाँ लेकर युद्व करना-यह भी यहाँ की संस्कृति में शमिल है। वैसे दो-चार विद्वानों, संगीतज्ञों और अन्य गुणीजनों से डलमऊ कभी खाली नहीं रहा। प्रथम महायुद्व के बाद इन्फ्लुएंजा से जब घर खाली हो रहे थे, तब डलमऊ और उसके श्मसान क्या रहे होंगे, इसकी कल्पना डलमऊ जाकर ही की जा सकती है।

इस महामारी में कवि की पत्नी की ही मृत्यु नहीं हुई । पिता, चाचा आदि एक के बाद एक सभी स्वर्ग सिधारे। चार भतीजे और अपनी दो संतान का भार 21 साल के युवक के कन्धों पर पड़ा। कन्या को, जो अभी सवा साल की थी, नानी ने पाल-पोसकर जीवित रक्खा। नौकरी की खोज शुरू हो गई। महिषादल में नें नहीं पटी और उसे छोड़ना पड़ा। कलम की मजदूरी का अभ्यास शुरू हो गया। मौलिक रचना, अनुवाद, जो काम मिलता उसे उठा लेते। इस समय की अनेक प्रारम्भिक रचनाएॅं, उपन्यास, नाटक आदि भी नष्ट हो गये। आचार्य द्विवेदी से परिचय हुआ और उन्होंने बाबू शिवप्रसाद गुप्त को एक पत्र लिखा कि ज्ञान मण्डल में इन्हें कुछ कार्य दे दें। प्रयत्न विफल ही रहा। अक्तूबर सन् 1921में प्रताप प्रेस से बातचीत चली। मालिक लोग बीस-पच्चीस रूपये देने को राजी थे। उधर रामकृष्ण मिशन को एक सम्पादक की आवश्यकता थी। उस जगह का विज्ञापन भी निकला। द्विवेदी जी ने स्वामी माधवानन्दजी को पत्र लिखा और कानपुर में मुलाकात होने पर कम से कम पचास रूपये मासिक वेतन पर इन्हें रख लेने को कहा। दिसम्बर सन् ' 21 में द्विवेदीजी ने निरालाजी को लिखा, "जान पड़ता है स्वामीजी ने बहाना कर दिया है। पसंद किसी और ही को किया होगा। खैर उनकी इच्छा। इधर बनारस जाने में भी आपने देर कर डाली।" आगे चलकर निरालाजी ने रामकृष्ण मिशन में काम किया और साल भर तक

'समन्वय' का सम्पादन किया। इसी समय रामचरितमानस पर उन्होंने वे निबन्ध लिखे जिनमें सप्त सोपान आदि की नई व्याख्या उन्होंने तुलसीदास को रहस्यवादी सिद्व किया है।

सन् 1913 में बाबू महादेव प्रसाद सेठ ने 'मतवाला'निकाला साल भर तक निराजाली वहाँ रहे। 'मतवाला' के पहले अंक में रक्षाबन्धन पर कविता छपी है, ओर उसी के साथ 'मतवाला'के सम पर गढ़ा हुआ 'निराला' नाम भी प्रकाशित हुआ है। अठारहवें अंक में 'जूही की कली' छपी है जिसके साथ पहली बार कवि का पूरा नाम पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रकाशित हुआ है। उनके जीवन में बहुत दिनों के बाद ऐसा सुखद वर्ष आया था। महादेव बाबू बड़ी खातिर करते थें। बहुत दिनों के बाद अवरूद्व साहित्यिक प्रतिभा को प्रकाश में आने का अवसर मिला था। शाम को भाँग छानना, दिन-भर सुरती फाँकना, थियेटर देखना, साहित्यिकों से सरस वार्तालाप करना, मुक्त छन्द में कविता लिखना, छद्म नामों से हिन्दी के आचार्यो की भाषा व्याकरण और मुहावरों की भूलें दिखाना,और यों समस्त हिन्दी संसार की चुनौती देना- उनके जीवन का कार्यक्रम था। उस समय ऐसा लगता था कि मुंशी नवजादिक लाल, बाबू शिवपूजन सहाय, और पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ है। बंगाल में स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कार्य देखकर हिन्दी-भाषी प्रान्तों में साहित्यिक और सामाजिक क्रान्ति करने के लिए प्रबल आकांक्षा जाग उठी थी परन्तु साधन कम थे और विरोध अधिक था। ग्रहों की विशेष कृपा होने से निरालाजी साल दो साल तक ही एक जगह पैर जमाकर रह सकते थे। साल भर बाद ही वह 'मतवाला' से अलग हो गये और अगले पाँच वर्ष अस्थिरता, आर्थिक चिन्ता, शारीरिक और मानसिक रोग में बीते। कलकत्ते से चलते हुए उन्होंने बाबू बालमुकुन्द डागा, पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे, पण्डित सकल नारायण शर्मा और पं0 जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी से अपनी योग्यता के प्रमाणपत्र लिये। चतुर्वेदीजी नई कविता, विशेष रूप से मुक्त छन्द के प्रबल विरोधी थे। कवि-सम्मेलनों में वे निरालाजी की नकल उतारा करते थे। सम्वत् 1983 में अपने दिये हुए प्रमाण-पत्र में उन्होंने विरोध का जिक्र न करते हुए लिखा था, "आपके निराले ढंग के पद्यो ने हिन्दी संसार में युगान्तर-सा उपस्थित कर दिया है।" पता नहीं, कहाँ तक इन प्रमाण पत्रों ने आर्थिक प्रश्न हल करने में सहायता की।

सन् '26 से '28 तक का समय उनकी घोर अस्वस्थता का समय भी था। इन वर्षो में प्रसादजी,शान्तिप्रिय द्विवेदी, विनादशंकरजी व्यास, पंण्डित कृष्ण विहारी मिश्र, प्रेमचन्दजी आदि ने उन्हें जो पत्र लिखे है, उनमें बराबर बीमारी की चर्चा है। तो कभी में फोड़ा,तो कभी और कुछ। उस समय आज की तरह का भारी शरीर नहीं था। 'सुधा'में छपे हुए उनके पुराने चित्र में उनका बहुत कुछ वहीं हुलिया है जो आजकल उनके पुत्र पण्डित रामकृष्ण त्रिपाडी का है। प्रेमचन्दजी ने

फरवरी सन् '28 में अपने पत्र में लिखा था, "मीयादी बुखार क्या इसीलिए आपकी ताक में बैठा था कि घर से निकलें तो धर दबाऊँ। किस्मत ने वहाँ भी आपका साथ न छोड़ा। बीमारी ने तो आपकों दबा डाला होगा। पहले ही कहाँ के ऐसे मोटे-ताजे थे।" रोग और आर्थिक कष्टों से यह लड़ाई अधिकतर गढ़ाकोला के उसी कच्चे मकान में हुई।जब-तब कलकत्ता जाते रहतेथे। बाजार के काम से जो कुछ मिलता उसमें से खाने-खरचने के बाद यथाशक्ति भतीजों को भी भेजते थे। उनके पुराने कागज-पत्रों में कुछ मनीआर्डर की रसीदें हैं जिनसे पता लगता है कि गृहस्थी के प्रति वे नितान्त उदासीन न थे। सन् '26 में पण्डित मन्नीलाल शुक्ल, मार्फत रामगोपाल त्रिपाठी, के नाम कलकत्ते से पचास रूपये भेजे थे। कलकत्ते से भी वे घर की छोटी-छोटी बातों के लिए निर्देश किया करते थे। एक उदाहरण काफी होगा। सितम्बर सन् 27 में उन्होंने अपने भतीजे श्री केशव प्रसाद को लिखा था, "तमने जो लोगों के दाम दे दिये और अनाज खरीद लिया, से अच्दा किया। पण्डितजी ने बाग का चारा 22 रूपये में बेच डाला यह भी अच्छा हुआ। देखना, पेड़ न चर जाएँ, जो पौधे हैं। रूपया पण्डितजी को हम बहुत जल्द भेजते हैं।............... तुम लोगों को जड़वर भेजेंगे।" सन् '28 में एक पत्र में उन्होंने बाग बेच डालने का जिक्रकिया है और लिखा है, "खर्च की तकलीफ हो तो बर्तन बेच डालना। तकलीफ न सहना।" शायद इन्हीं सब बातों को सोचकर 'सरोज स्मृति' में उन्होंने लिखा था-

"दुख ही जीवन की कथा रही

क्या कहुँ आज, जो नहीं कही।"

इसी समय उनहोंने 'ध्रुव', 'प्रहलाद', 'राणा प्रताप', रवीनद्र-कविताकानन', 'हिनदी-बंगला शिक्षा', 'रामकृष्ण वचनामृत', आदि पुस्तकें लिखीं या अनुवाद कीं। 'हैक वर्क' या बाजार का काम उन्हें बराबर करना पड़ा लेकिन प्रकाशकों की ठग-विद्या के कारण उसे भी वे जमकर नहीं कर सके। पत्रों के सम्पादक काम माँगने पर क्वालिफिकेशन पूछते थे।

चण्डीदास के पदों का अनुवाद करने के लिए इसी वर्ष छतरपुर से भी बुलावा आया। उस समय बाबू गुलाबराय महाराज साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी थे।

अन्यत्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का अनुवाद करने की बात भी चल रही थी। कोपीराइट के झगड़े के कारण राय श्रीकृष्णदासको अनुवाद कराने का विचार छोड़ना पड़ा। सन् '28 के शुरू में 'माधरी' के सम्पादक ने पूछा कि सम्पादन विभाग में जगह मिलने पर क्या वह सम्पादक की जिम्मेदारियों को निभा सकेंगे। हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के बारे में उनकी योग्यता की जाँच करते हुए यह भी पूछा गया था, "प्रूफरीडिंग का कैसा अभ्यास है ?" हिन्दी में

प्रूफरीडर और सम्पादक, ये दोनों शबद पर्यायवाची से हैं। सम्पादकके पत्र के उत्तर में उन्होंनेजो कुछ लिखा हो, अगले महीने 'माधुरी' कार्यालय ने लिख भेजा, "इन शर्तो पर अभी आपकों न बुला सकूँगा।"

सन् '28 से उन्होंने स्थायी रूप से गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय में काम करना शुरू किया। 'सुधा'के लिए वे संपादकीय नोट लिखते थे और उसके सम्पादन का सारा भार सँभलते थे। यहींपर'अप्सरा', 'अल्का' उपन्यास और 'लिनी'की कहानियाँ लिखीं । उनका अध्ययन-क्रम भी पहले की अपेक्षा सुव्यवस्थित हुआ। विश्वविद्यालय के छात्रों का एक ऐसा दल भी तैयार हुआ जो इनके साहित्य का समर्थन करता था और अपने साहित्य के लिए इनसे प्रोत्साहन पाता था। अचल, कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह, रामरतन भटनागर 'हसरत',दयानन्द गुपत आदि उनके निकट संपर्क में आने वाले तरूण साहित्यिक थे।

प्रसादजी उनसे स्नेह ही न करते थे, इनकी देखभाल भी करते थे। रूग्णावस्था में उन्होंने औषधि आदि का प्रबन्ध करने में बड़ी सहायता की थी। तथी श्री सुमित्रानन्दन पन्त से पत्र-व्यवहार शुरू हुआ और एक ही साहित्यिक आन्दोलन में काम करने के कारण साक्षात् परिचय न होने पर भी सहज मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया।'पल्ल' की भूमिका में आक्षेप करने के कारण निरालाजी ने 'पल्लव'पर एक ध्वंसात्मक लेख लिखा। आगे भी 'भारत' आदि पत्रों में वादविवाद चला, परन्तु उससे उनकी मैत्री में कभी अन्तर नहीं आया। शायद ही किसी युग के तीन कवियों में ऐसा स्नेह सम्बन्ध रहा हो जैसा प्रसाद, निराला और पन्त में था और शायद ही किन्हीं दो व्यक्तियों के स्वभाव में इताना अन्तर हो जितना पन्त और निराला के। फिर भी दोनों ने न जाने कितने दिन घण्टों एक साथ रहकर बिताये है।। इसका यही कारण है कि वे एक दूसरे को जितनी अच्छी तरह जानते पहचानते हैं, उतना शायद दूसरा नहीं।

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, रामरतन भटनागर 'हसरत' दूसरी कोटि के मिश्र थे। इनमें चन्द्रप्रकाशजी को निराजाली पर सबसे ज्यादा श्रद्वा थी। उनके गीतों पर महाकवि की शैली की छाप है। 'अप्सरा'के बारे में वाद विवाद होने पर उन्होंने उसमें हिस्सा लिया था । भार्गव मैजेस्टिक होटल टूटने पर वह मकान लेकर रहने लगे। 58 नं0 नारियल वाली गली के दुमंजिले मकान में वह कई साल तक रहे। कभी रामकृष्णजी और स्वर्गीय सरोज आकर साथ रहती थीं। सरोज के चले जाने पर वे उसमें बहुधा अकेले ही रहे। कलकत्ते के बालकृष्ण प्रेस और गढ़ाकोला के घर की तरह इस मकान का भी साहित्यिक महत्व है। 'तुलसीदास', 'प्रभावती', 'गीतिका' के अधिकांश गीतों की रचना इसी समय हुई। गंगा-पुस्तकमाला के संचालक श्री दुलारेलाल भार्गव से उनकी अच्छी ही निभी। निरालाजी सम्पादन-कार्य ही न करते थे,

दुलारेलालजी की साहित्यिक कार्यवाही में भी सहायता करते थे। 'दुलारे दोहावली' की पहली भूमिका उन्होंने लिखी थी और उसके दोहों के बारे में परामर्श दिया था। 'वीणा' में एक दोहे के अनेक अर्थ करके उन्होंने अपनी समझ में दोहवली का बड़ा अच्छा समर्थन किया था। उनके प्रिय मित्र बनारसीदासजी चौबे ऐसे मौकों की ताक में ही रहते थे अपनी समझ में उन्होंने भी खूब फायदा उठाया। गंगा-पुस्तक-माला से अलग होने के समय 'गीतिका' प्रेस में जा चुकी थी। उस समय जितने गीत लिखे गये थे, निरालाजी ने उनकी टीका भी की थी। सौदा न पटने के कारण पुस्तक प्रेस से मांग ली गई और वह फिर लीडर प्रेसमें छपी। लखनऊ छोड़ने पर अधिकतर वे इलाहाबाद ही रहे। सालभर तक मकान बन्द पड़ा रहा। पिछला किराया उतारने के लिए नया चढ़ाते रहे। लीडर प्रेस से लौटकर एक मुश्त किराये की बड़ी रकम अदा की। 'गीतिका', 'अनामिका', 'निरूपमा', पुस्तकें लीडर प्रेस से प्रकाशित हुई।

इसके बाद कुछ दिन के लिए वे फिर लखनऊ में आकर रहने लगे। नारियल वाली गली से थोड़ा आगे चलकर भूसामण्डी हाथीखाना में उन्होंने मकान लिया। यह पहले कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल का जमाना था। इन्हीं दिनों पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी से भी उनका परिचय हुआ। चतुर्वेदीजी प्राचीन साहित्य के प्रेमी हैं। छायावाद के प्रति उनकी वैसी सहानुभूति नहीं है। आर्यनगर में उनके घर पर अक्सर साहित्यिक विवाद हुआ करता था। भूसामण्डी के मकान में रहते हुए निरालाजी ने इण्डियन प्रेस के लिए बंकिम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद का काम किया। दो-तीन उपन्यास अनुवाद करने के बाद मालूम हुआ कि इंडियन प्रेस के व्यवस्थापक अनुवाद के शब्दों के हिसाब से इन्हें काफी रूपया दे चुके हैं। निरालाजी के अनुसार यह हिसाब-किताब गलत था और उन्होंने काम बन्द कर दिया।

महायुद्ध छिड़ चुका था जब वे कर्वी गये। वहॉ बुरी तरह बीमार पड़ गये और उनकी वास्तविक स्थिति से उनके अधिकांश मित्र अपरिचित ही रहे। इसी बीमारी से करीब 70 पौण्ड वजन कम हो गया। उस बार स्वास्थ्य गिरने से वे फिर अच्छी तरह संभल नहीं पाये। दारागंज, प्रयाग में उन्होंने एक छोटा-सा मकान लिया जिसके एक भाग में उसके मकान-मालिक भी रहते थे। इसकी छत इतनी नीची थी कि आदमी उसे हाथ उठाकर छू सकता था। निरालाजी के लिए यह मकान कठघरे जैसा था। इसी में 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे', 'नये पत्ते' 'बेला' आदि पुस्तकें उन्होंने लिखीं। प्रातःकाल गंगा नहाते थे और स्वयं भोजन पकाते थे। बर्तन धोना, घर साफ करना- जब भी वे उसे साफ करते हों- उनका अपना काम था। इसमें रहते हुए उनकी दशा बराबर चिन्ताजनक रही। श्रीमती महादेवी वर्मा ने साहित्यकार संसद के द्वारा और वैसे भी उनकी देखरेख करने का प्रयत्न किया। कुछ लोगों की धारणा है कि निरालाजी को जो कुछ रूपया मिलता है, वे सब खा-पी डालते हैं। इसके विपरीत सत्य यह है कि अधिकांश वे दान कर देते थे। कहीं कोई कवि-सम्मेलन हुआ, बुलावा आने पर बड़े ही व्यावसायिक ढंग से सौदा पटाया, पेशगी रूपया मॅगाकर कपड़े-लत्ते बनवाये, जिसमें दरी, चादर, रजाई, तकिया, जूते वगैरह सभी कुछ शामिल है। दूसरे कवि-सम्मेलन तक उनके पास जूते छोड़कर शायद और कुछ भी नहीं रह जाता। इसीलिए फिर पेशगी मांगने और पहले से अच्छा सौदा पटाने की जरूरत पड़ती थी। जिस

तरह जवानी मं वह बच्चों के लिए खर्च भेजते थे, उसी तरह अब भी गृहस्थी की ओर उनका बराबर ध्यान रहता था। पहली पुत्रवधू का देहान्त होने पर उन्होंने रामकृष्णजी का दूसरा विवाह किया और इन सब कामों में काफी रूपया खर्च किया। अब भी यथासम्भव वह उनकी सहायता करते हैं।

16.5 निराला : परिचय,पाठ एवं आलोचना

16.5.1 'निराला' : रचना, परिचय

'निराला' पुस्तक हिंदी के शीर्ष समालोचक रामविलास शर्मा द्वारा लिखित है। इस पुस्तक का प्रकाशन वर्ष 1946 ई. है। हिंदी साहित्य में निराला पर लिखित यह प्रथम स्वतंत्र पुस्तक है। निराला का काव्य - संसार इतना वैविध्य पूर्ण, प्रयोगधर्मो रहा है कि वे बहुत दिनों तक समालोचकों एवं पाठकों के बीच अबूझ ही बने रहे। निराला की मुक्त छंद संबंधी अवधारणा हो या अन्य प्रयोग वे सदैव अलग ही खड़े दिखे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे समीक्षक भी निराला साहित्य की 'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा' को तो सराहते हैं लेकिन स्वयं उस प्रतिभा के विश्लेषण का प्रयास नहीं करते। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने अवश्य छायावाद के संदर्भ में 'विशाल भारत' में महत्वपूर्ण लेख लिखा, लेकिन उसका विस्तार उन्होंने बहुत बाद में निराला पर 'कवि निराला' नामक आलोचनात्मक पुस्तक लिखकर किया। इस दृष्टि से बच्चन सिंह ने अवश्य रामविलास शर्मा जी की पुस्तक के तुरन्त बाद ही 'क्रान्तिकारी निराला' नामक पुस्तक लिखा, लेकिन रामविलास शर्मा जैसी तार्किक दृष्टि का बच्चन सिंह में अभाव है। कहने का भाव यह है कि रामविलास शर्मा ऐसे पहले आलोचक हैं और 'निराला' ऐसी पहली पुस्तक है जिसने महाकवि निराला को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की। इस पुस्तक का क्रान्तिकारी महत्व इस बात में भी है कि इसके प्रकाशन से पूर्व छायावादी परिधि में निराला की स्थिति जयशंकर प्रसाद एवं सुमित्रानन्दन पंत के बाद मानी जाती थी, किन्तु इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् निराला छायावाद के तो प्रथम पांक्तेय हुए ही, हिंदी कविता के भी शीर्षस्थ कवि स्वीकार कर लिये गए। 'निराला' पुस्तक में कुल 16 अध्याय हैं। भूमिका को भी शामिल कर लिया जाये तो इनकी संख्या 17 हो जाती है। अध्यायों के शीर्षक हैं वैसवाड़े का जीवन, साहित्य की पृष्ठभूमि, एक आकर्षक व्यक्तित्व, सांस्कृतिक जागरण और परिमल, रीतिकालीन परम्परा और छायावाद, नया कथा-साहित्य, गीत, विराट की उपासना, 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा, कथा-साहित्य में नई प्रवृत्तियाँ, प्रगति और प्रयोग, निराला जी की युद्धकालीन कविताएँ, जीवन-दर्शन और कला, उदात्त-अनुदात्त, मृत्युन्जयी निराला, "यह मतवाला – निराला''। चूँकि यहाँ हमारे विवेचन का केंन्द्र-बिन्दु जीवनी साहित्य है, इस दृष्टि से निराला जी के जीवन संबंधी ज्ञान की दृष्टि से 'बैसवाड़े का जीवन' अध्याय विशेष रूप से प्रासंगिक है, इसीलिए इस अध्याय का चयन किया गया है।

16.5.2 'निराला' : पाठ विश्लेषण

आलोच्य पाठ 'बैसवाड़े का जीवन' परिमाण में छोटा है किन्तु अपने लघु कलेवर में यह बड़ा जीवन-परिदृश्य समेटे हुए है। पाठ का प्रारम्भ निराला जी की पारिवारिक पृष्ठभूमि से होता है। किसी साहित्यकार के गठन में उसकी पारिवारिक-भौगोलिक पृष्ठभूमि कैसे सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बन जाती है, इसका संकेत लेखक ने पाठ के प्रारम्भ में ही करा दिया है – भरे-पूरे परिवार में निराला जी का जन्म हुआ था। माता थीं, पिता थे, चाचा थे, सभी कुछ था। अवध में अपना गाँव छोड़कर यह परिवार बंगाल की एक रिआसत में जा बसा था।.............बंगाल की शस्य-श्यामला भूमि पर महिषादल का भी एक राज्य था। वन, प्रकृति, आम, नारियल, कटहल, बाँस के पेड़, तालाब, नदियाँ, बेला, जूही, हरसिंगार, सब कुछ था; लेकिन जनता भूखी थी। यहीं पर संवत् 1953 की बसंतपंचमी (1897 ई.) को पण्डित रामसहाय त्रिपाठी के घर बालक सूर्यकुमार का जन्म हुआ था।" 'जनता भूखी' और 'यहीं पर' के विरूद्धों से कैसे हिंदी का क्रान्तिकारी कवि निराला जन्म लेता है, इस पृष्ठभूमि को बड़े सुन्दर ढंग से लेखक ने दिखाया है। माँ की मृत्यु के अभाव की पूर्ति कवि कैसे "अनगिनत आ गये शरण में जन-जननि'' लिखकर कवि कर सका है, इस पृष्ठभूमि का संकेत भी रामविलास जी ने किया है। किसी कवि के निर्माण में उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ कैसे योगदान करती हैं, इस दृष्टि से आलोच्य पाठ महत्वपूर्ण है।

निराला जी के व्यक्तित्व निर्माण में महिषादल के साथ ही बैसवाड़े के जीवन की भूमिका रही है। बैसवाड़े का परिचय लेखक ने इन शब्दों में दिया है : "अवध का यह भाग वैसे ठाकुरों की बस्ती के कारण बैसवाड़ा कहलाता है। ताल, छोटी नदियाँ और नाले, घनी अमराइयाँ यहाँ की शोभा हैं। इसे हम अवध का हृदय कह सकते हैं। अवधी का सबसे मधुर रूप यहीं बोला जाता है। इस भाषा में ओज और कोमलता दोनों का ही विचित्र सम्मिश्रण है।" निराला रचना में ओज और कोमलता दोनों ही है और अपने समुन्नत रूप में है।

निराला के जीवन में मनोहरा देवी का आगमन और एक पुत्र और एक कन्या को जन्म देकर इन्फ्लुएंजा की बीमारी से मृत्यु एक साथ ही रोमानीवृत्ति और करूणा दोनों भाव दे गया। पत्नी मृत्यु के उपरान्त 'घंटों श्मशान में बैठा रहता। कहीं कोई चूड़ी का टुकड़ा, हड्डी या राख मिल जाती, तो उसे हृदय से लगाये घूमा करता।' 'जूही की कली' की रचना श्मशान में बैठकर ही की गई है। दु:ख जहाँ कविता बनती है, वहाँ निराला का सघर्ष और सृजन है। भारतीय परम्परा में शिव की सती के लिए विलाप, कालिदास का अज-विलाप इत्यादि ऐसे प्रसंग हैं जो निराला के जीवन में साक्षात होते हैं। डलमऊ का मृत्यु साक्षात श्मशान का वर्णन तत्कालीन भारतीय परिवेश का जीता-जागता उदाहरण बन गया है। इस महामारी में कवि के पिता, चाचा भी स्वर्गवासी हुए। 21 वर्ष के युवक के कंधे पर चार भतीजे और दो संतान का भार। ऐसी विषम

परिस्थिति में साहित्यिक-संघर्ष की शुरूआत भी होती है : "लौटी रचना लेकर उदास/ताकता हुआ में दिशाकाश'' का समय भी यही है। लेकिन जो लेखक अपने आत्मसंघर्ष को सार्वजनीन बना देता है और सामाजिक संघर्ष को व्यक्तिगत संघर्ष बना देता है – वही निराला है। 'राम की शक्ति पूजा' और 'सरोज स्मृति' जैसी रचनाएँ इसी संघर्ष की साहित्यिक प्रतिध्वनियाँ हैं। 'समन्वय; 'मतवाला' पत्रों के माध्यम से निराला की साहित्यिक प्रतिध्वनियाँ हैं। 'समन्वय; 'मतवाला' पत्रों के माध्यम से निराला की साहित्यिक प्रतिभा कैसे निखरती है, इसका संकेत रामविलास शर्मा जी ने बहुत ही सुन्दरता के साथ किया है। 1928-30 तक का समय निराला जी के शारीरिक अस्वस्थता और साहित्यिक विकास का समय है। निराला जी के साहित्यिक संघर्ष, उनकी रचनाओं के प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के दायित्व को रामविलास जी ने उनके समानधर्माओं के सम्बन्ध पर केंद्रित है। निराला को प्रारंभिक समय में जितना विरोध झेलना पड़ा था, उतना ही उनके प्रशंसकों का वर्ग भी उनके पक्ष में खड़ा होता गया। भारतीय जनता के जीवन संघर्ष के स्वर को निराला ने पहचाना और निराला के संघर्ष को रामविलास जी ने। अब रामविलास शर्मा जी के इस कर्म को आगे आने वाली पीढ़ी को समझने की जरूरत है।

16.5.3 'निराला' : आलोचनात्मक मूल्यांकन

निराला को महाकवि के रूप में प्रतिष्ठा देने वाले आलोचक रामविलास शर्मा की यह निराला पर लिखी गई प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक है (निराला पुस्तक में लेखक का वक्तव्य)। 'निराला' पुस्तक मूल रूप से आलोचना की पुस्तक है, जीवनी नहीं। किन्तु 'बैसवाड़े का जीवन' शीर्षक एक अध्याय अपनी व्यापकता एवं गहराई से जीवनी साहित्य की सारी विशेषताओं को अपने में समेटे हुए है। निराला का जन्म, उनकी पारिवारिक परिस्थिति, उन्नाव (गढ़ाकोला) एवं महिषादल की सामाजिक भौगोलिक परिस्थिति और छायावादी युग का साहित्यिक परिवेश सभी कुछ एक छोटे से अध्याय में रामविलास जी ने समेटा है। चूँकि यह अध्याय के रूप में निराला की जीवनी है, अत: जीवनी साहित्य की संपूर्ण विशेषता का इसमें आशा करना व्यर्थ ही है। निराला के जीवन और उसमें भी उनके साहित्यिक संघर्ष को इस अध्याय में जगह मिली है, अपेक्षाकृत संक्षिप्त रूप में। निराला साहित्य के प्रारम्भिक स्वरूप का विस्तार भी इसमें कम है। लेकिन संकेत रूप में लेखक ने सूर्यकान्त त्रिपाठी के 'निराला' में रूपान्तरण का जिक्र अवश्य कर दिया है। इस पाठ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें रामविलास शर्मा जी ने किसी रचनाकार के परिवेश से उसके व्यक्तित्व के विकास के अंतर्सम्बन्ध को बड़ी सूक्ष्मता से उद्घाटित किया है। लेखक की भाषा प्रवाहपूर्ण है। यह गद्य की समस्त विशेषताओं से युक्त है तथा अनावश्यक अलंकरण के भार से मुक्त भी है। कुल मिलाकर जीवनी साहित्य के रूप-विधान के प्रश्न से हटकर विचार करें तो यह रचना अपने लक्ष्य में सफल रही है।

अभ्यास प्रश्न 2

(क) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए

1. जीवनी विधा का संबंध आधुनिक काल से है। (सत्य/असत्य)
2. जीवनी लेखक के लिए चरित नायक का समकालीन होना आवश्यक है। (सत्य/असत्य)
3. 'भक्तमाल' रचना नाभादास की है। (सत्य/असत्य)
4. कार्तिक प्रसाद खत्री ने मीराबाई का जीवन चरित्र लिखा है। (सत्य/असत्य)
5. 'हरिश्चन्द्र' ग्रन्थ के रचनाकार शिवनंदन सहाय हैं। (सत्य/असत्य)

(ख) सुमेलित कीजिए

क **रचना**	**ख** **रचनाकार**
1. कार्लमार्क्स	जगदीशचन्द्र माथुर
2. प्रेमचंद घर में	राहुल सांकृत्यायन
3. निराला की साहित्य साधना	शोभाकान्त मिश्र
4. आवारा मसीहा	शिवरानी देवी
5. बाबू जी	विष्णु प्रभाकर
6. जिन्होंने जीना जाना	रामविलास शर्मा

16.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि –

- जीवनी विधा आधुनिक कालीन चेतना की उपज है। जीवनी विधा किसी महत्वपूर्ण, संघर्षशील चरित्र को सामाजिक गतिशीलता के बीच रखकर देखने का अनुशासनात्मक प्रयास है।
- रामविलास शर्मा हिंदी की प्रगतिशील, जनवादी परम्परा के शीर्षस्थ आलोचक हैं। रामविलास शर्मा जी का कृतित्व हिंदी साहित्य में परिमाण एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से अनुकरणीय है।
- निराला का जीवन 'दुख ही जीवन की कथा रही' तो रहा ही है किन्तु इसी के साथ ही वह संघर्ष एवं विद्रोह का जीता-जागता स्वरूप भी है।
- निराला पर रामविलास शर्मा जी ने विस्तार से लिखने की बजाय विश्लेषात्मक ढंग से लिखा है। किसी रचनाकार का निर्माण उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ किस प्रकार करती हैं, निराला की जीवनी इसका अच्छा उदाहरण है।

16.7 शब्दावली

मातहत	-	अधीन, अंतर्गत
रहस्यवादी	-	परोक्ष सत्ता को मानने वाला
अस्थिरता	-	अनिश्चित स्थिति
उदासीन	-	काम के प्रति लापरवाह
ध्वंसात्मक	-	नष्ट करने का भाव
वज्रपात	-	बिजली गिरना, कठिन समय
जोत	-	लौ

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(क) 1. 1897 ई.
2. रामविलास शर्मा
3. सरोज
4. महिषादल
5. रामविलास शर्मा

अभ्यास प्रश्न 2

(क) 1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

(ख) 1. राहुल सांकृत्यायन
2. शिवरानी देवी
3. रामविलास शर्मा
4. विष्णु प्रभाकर
5. शोभाकान्त मिश्र
6. जगदीशचन्द्र माथुर

16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, रामविलास , निराला

2. तिवारी, रामचन्द्र , हिंदी का गद्य साहित्य

16.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, धीरेन्द्र (सं) – हिंदी साहित्यकोश I , ज्ञानमण्डल प्रकाशन
2. कोश, कविता – गूगल साइट

16.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. निराला के व्यक्तित्व पर निबंध लिखिए
2. रामविलास शर्मा के लेखन शैली पर प्रकाश डालिए

इकाई 17 संस्मरण - पथ के साथी : परिचय,पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 संस्मरण साहित्य

17.3.1 संस्मरण साहित्य का इतिहास

17.3.2 संस्मरण साहित्य की विशेषता

17.4 संस्मरण और पथ के साथी

17.4.1 लेखिका परिचय

17.4.2 कृति परिचय

17.5 मूल पाठ

17.6 पाठ विश्लेषण

17.6.1 अंतर्वस्तु के धरातल पर

17.6.2 शिल्प के धरातल पर

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

17.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

17.12 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

यह प्रश्न पत्र विभिन्न गद्य विधाओं के परिचय, पाठ एवं आलोचना पर केंद्रित है। पूर्व में आपने अन्य गद्य विधाओं का अध्ययन किया। आपने इस क्रम में अध्ययन में जाना कि अन्य गद्य विधाओं का सम्बन्ध आधुनिक कालीन चेतना से है। आधुनिक युगीन चेतना को अभिव्यक्त करने के क्रम में जब पुरानी साहित्यिक विधाएँ अपर्याप्त सिद्ध होने लगीं तो नई साहित्यिक विधाओं का, विशेषकर गद्य विधाओं का जन्म हुआ। मानव जीवन दिन-प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। जटिल परिस्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक विधाओं के स्वरूप में भी परिवर्तन आया। 'संस्मरण' विधा की उत्पत्ति इसी क्रम में है।

आधुनिक अन्य गद्य विधाओं में संस्मरण का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्मरण का संबंध स्मृति से है। संस्मरण में लेखक द्वारा अतीत की वह स्मृतियाँ रचना का अंग बनती हैं, जिसमें वह ऐसे व्यक्तित्व को याद करता है जो उसके जीवन के अभिन्न अंग रहे है और उसे प्रभावित किया हो। एक दृष्टि से देखा जाये तो संस्मरण विशिष्ट व्यक्तियों पर लेखक द्वारा स्मृतिचित्र है। जैसा कि संकेत किया गया कि संस्मरण विधा आधुनिक विधा है। विशेषकर इस विधा का संबंध 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों से है। राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिशील चेतना ने इस विधा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संस्मरण विधा के उन्नयन में महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण योगदान है। आलोच्य स्ंस्मरण 'पथ के साथी' पुस्तक से संबंधित है, जिसमें उन्होंने सुभद्राकुमारी चौहान के व्यक्तित्व को बड़ी ही आत्मीयतापूर्ण ढंग से स्मरण किया है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- संस्मरण विधा की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- संस्मरण विधा के इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्मरण विधा में महादेवी वर्मा के योगदान को समझ सकेंगे।
- 'पथ के साथी' रचना की अंतर्वस्तु से परिचित हो सकेंगे।
- संस्मरण विधा की प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्मरण के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

17.3 संस्मरण साहित्य

17.3.1 संस्मरण साहित्य का इतिहास

आपने अध्ययन किया कि संस्मरण विधा आधुनिक काल की देन है। संस्मरण विधा के स्तर पर आधुनिक काल की देन हैं, लेकिन हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि संस्मरण में स्मृति आधार बिन्दु है और प्राचीन काल से हर देश व संस्कृति में पूज्य पुरूषों एवं महापुरूषों के कृत्यों को स्मृरित किया जा रहा है। यहाँ प्रश्न उठता है कि प्राचीन स्मृति ग्रंथ एवं संस्मरण में मूलभूत अंतर क्या है ? प्राचीन स्मृति ग्रंथों में श्रद्धा, चमत्कार एवं अतिप्राकृत घटनाओं की बहुतायत रहती थी, किन्तु संस्मरण विधा में स्मृति-नायक को आत्मीय तटस्थता के साथ संस्मरणकार हमारे सामने प्रस्तुत करता है। एक के लिए श्रद्धा-स्तुति अनिवार्य है तो दूसरे के लिए तटस्थता-संपूर्णता। इसीलिए संस्मरण विधा को आधुनिक युग में आकर स्वीकृति मिली।

स्मरण विधा के इतिहास के संदर्भ में हम देखते हैं कि 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से इसकी शुरूआत होती है। सन् 1928 के लगभग प्रकाशित पद्मसिंह शर्मा के ‘पद्मपराग’ से संस्मरण विधा का प्रारम्भ स्वीकार किया जाता है। किन्तु व्यापक रूप से इसे स्वीकृति बाद के दशक में मिली। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। रेखाचित्र – संस्मरण विधा के संधि बिन्दु पर उनकी चार रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। अतीत के चलचित्र (1941 ई.), स्मृति की रेखाएँ (1943 ई.), पथ के साथी (1956 ई.) और ‘मेरा परिवार’ (1972 ई.)। इन रचनाओं में संस्मरण की दृष्टि से स्मृति की रेखाएँ तथा पथ के साथी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसी क्रम में बनारसीदास चतुर्वेदी की हमारे आराध्य, संस्मरण (1952 ई.), शिवपूजन सहाय रचित वे दिन वे लोग (1946 ई.), माखनलाल चतुर्वेदी कृत समय के पाँव (1962 ई.), जगदीशचन्द्र माथुर कृत दस तस्वीरें (1963 ई.), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर रचित ‘भूले हुए चेहरे’ आदि रचनाएँ उल्लेख हैं। संस्मरण विधा की अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं –

- बच्चन निकट से (1968 ई.) अजित कुमार और ओंकार नाथ श्रीवास्तव
- गाँधी संस्मरण और विचार (1968 ई.) – काका कालेलकर
- संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (1969 ई.) –रामधारी सिंह दिनकर
- व्यक्तित्व की झांकियाँ (1970 ई.) - लक्ष्मीनारायण सुधांशु
- अंतिम अध्याय (1972 ई.) – पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
- स्मृति की त्रिवेणिका (1974 ई.) – लक्ष्मी शंकर व्यास

- चंद संतरें और (1975 ई.) – अनीता राकेश
- मेरा हमदम मेरा दोस्त (1975 ई.) – कमलेश्वर
- रेखाएँ और संस्मरण (1975 ई.) – क्षेमचन्द्र सुमन
- मैंने स्मृति के दीप जलाये (1976 ई.) – रामनाथ सुमन
- स्मरण को पाथेय बनने दो (1978 ई.) – विष्णुकान्त शास्त्री
- अतीत के गर्त से (1979 ई.) – भगवतीचरण वर्मा
- श्रद्धांजलि संस्मरण (1979 ई.) – मैथिलीशरण गुप्त
- पुन: (1979 ई.) – सुलोचना रांगेय राघव
- यादों की तीर्थयात्रा (1981 ई.) – विष्णु प्रभाकर
- औरों के बहाने (1981 ई.) – राजेन्द्र यादव
- जिनके साथ जिया (1981 ई.) – अमृतलाल नागर
- सृजन का सुख-दुख (1981 ई.) – प्रतिभा अग्रवाल
- युगपुरूष (1983 ई.) – रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
- दीवान खाना (1984 ई.) – पद्मा सचदेव
- स्मृति लेखा (1986 ई.) – अज्ञेय
- हजारी प्रसाद द्विवेदी कुछ संस्मरण (1988 ई.) – कमल किशोर गोयनका
- भारतभूषण अग्रवाल : कुछ यादें कुछ चर्चाएँ (1989 ई.) – बिन्दु अग्रवाल
- हम हशमत (1977 ई.) – कृष्ण सोबती
- आदमी से आदमी तक (1982 ई.) – भीमसेन त्यागी।

17.3.2 संस्मरण साहित्य की विशेषता

संस्मरण साहित्य पर टिप्पणी करते हुए डा. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, "संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषय दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णत: तटस्थ नहीं रह पाता। वह अपने 'स्व' का पुन: सर्जन करता है।" (हिंदी का गद्य-साहित्य, पृष्ठ 297) कहने का अर्थ यह हैं कि लेखक किसी व्यक्तित्व की स्मृति को शब्दों के माध्यम से पुन: जीने की कोशिश करता है तो संस्मरण विधा की उत्पत्ति होती है। विधा के स्तर पर रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा से संस्मरण का निकट का संबंध है। लेकिन

संस्मरण विधा की अपनी निजी कुछ विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य विधाओं से अलग करती हैं। जीवनी में भी किसी का जीवन केन्द्र में होता है। जीवनी और संस्मरण में भी, लेकिन दोनों में अंतर है। जीवनी जहाँ चरित नायक के जीवन के संपूर्ण पक्ष पर आधारित होती है वहीं संस्मरण सीमित जीवन पर जीवनी की हर घटना में लेखक की सहभागिता अनिवार्य नहीं है लेकिन संस्मरण की प्रत्येक घटना लेखक द्वारा अनुभूत व संवेदित होनी अनिवार्य है। इस दृष्टि से संस्मरण में अंतरंगता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्मरणकार किसी व्यकित की जीवनी तथ्य-ब्यौरे के आधार पर भी लिख सकता है लेकिन संस्मरण तब तक नहीं लिखे जा सकते जब तक कि लेखक का स्मर्यमाण व्यक्ति से अंतरंग संबंध न हो। यहाँ तक कि रेखाचित्र के लिए भी अंतरंगता उतनी अनिवार्य नहीं है जितनी संस्मरण लेखक के लिए। किसी पागल को सड़क पर देखकर रेखाचित्र तो लिखा जा सकता है, लेकिन संस्मरण नहीं। लेखक किसी व्यक्ति से जब तक हार्दिक रूप से किसी व्यक्तित्व से नहीं जुड़ता तब तक वह उस व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व का न तो चित्रण कर सकता है और न ही मूल्यांकन । संस्मरण उसी व्यक्ति पर लिखा जा सकता है जिस व्यक्ति से लेखक का घन्टिष्ठ संबंध है। संस्मरण का नायक इसके केन्द्र में होता है। लेकिन जीवनी विधा की तरह केवल नायक ही इसकी रचना के केन्द्र में नहीं होता बल्कि इसमें लेखक की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। संस्मरण लेखक और नायक के संबंध, लगाव व हार्दिकता से जुड़ी रचना है। एक तरह से यह रचना लेखक की दृष्टि में स्मर्यमाण व्यक्ति का चरित्रांकन है, इसलिए इसमें विषय और विषयी दोनों का महत्व होता है। संस्मरण के लिए अतीत अनिवार्य है। इसलिए इसमें ‘स्मृति’ का बहुत महत्व है। लेखक अतीत की घटनाओं को अपनी स्मृति के माध्यम से पुन: जीवंत करता, इस क्रम में काल एवं स्मृति का कुशल संयोजन संस्मरण की विशेषता है। संस्मरण में चूँकि वही घटनाएँ स्थान पाती हैं इसलिए इसमें सघनता का गुण पाया जाता है। अतीत की स्मृति में वही चीजें स्थायी हो पाती हैं, जो अति-महत्वपूर्ण होती हैं। अत: इस दृष्टि से संस्मरण अतीत की स्मृति का सृजनात्मक प्रयास है। अतीत की स्मृति महत्वपूर्ण होकर भी लेखक का ध्येय नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण है वह रचनात्मक प्रयास जो पाठक को दिशा दे सके या प्रभावित कर सके। संस्मरण के संदर्भ में यह प्रश्न हमेशा उठाया जाता है कि संस्मरण क्यों लिखा जाता है या संस्मरण लेखन के उद्देश्य क्या हैं ? संस्मरण विधा अन्य सृजनात्मक विधाओं की ही तरह मानवीय जरूरतों की पूर्ति का एक ‘स्मृति-प्रयास’ है। संस्मरण तब ज्यादा लिखे जाते हैं जब सृजनात्मक व्यक्तित्व का अधिकता किसी समाज में ज्यादा हो। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में या राष्ट्रीय आन्दोलन की ऊर्जा से निर्मित व्यक्तित्व ही हिंदी संस्मरण विधा में रचना का केन्द्र बने हैं। इससे स्पष्ट है कि संस्मरण के केन्द्र में व्यक्तित्व निर्माण का प्रयास आधारभूत रूप में है। लेकिन जीवनी की तरह यह सामाजिक प्रेरणा के वशीभूत होकर ही नहीं रचित होता। इस विधा में संस्मरण नायक का संस्मरणकार के ऊपर पड़े प्रभाव की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक तरह से यह बर्हिमुखी और आत्ममुखी दोनों गुणों से युक्त विधा है।

अभ्यास प्रश्न

निर्देश : (1) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. महादेवी वर्मा का जन्म....................वर्ष में हुआ ।
2. महादेवी वर्मा को..................कृति पर ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।
3. महादेवी वर्मा मुख्यत: ....हैं।
4. पथ के साथी का प्रकाशन वर्ष.............है।
5. संस्मरण विधा के प्रारंभिक लेखक ....हैं।

(2) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्र एक दूसरे के बहुत निकट हैं।
2. मेरा हमदम मेरा दोस्त की रचना है।
3. स्मृति लेखा अज्ञेय की रचना है।
4. संस्मरण विधा वर्तमान पर आधारित विधा है।
5. संस्मरण के लिए लेखक का नायक से साहर्चय अनिवार्य है।

(3) सुमेलित कीजिए

रचना	**रचनाकार**
स्मृति की रेखाएँ	विष्णुकांत शास्त्री
पद्मपराग	बनारसीदास चतुर्वेदी
संस्मरण	महादेवी वर्मा
वे दिन वे लोग	पद्मसिंह शर्मा
औरों के बहाने	शिवपूजन सहाय
स्मरण को पाथेय बनने दो	राजेन्द्र यादव

17.4 संस्मरण और पथ के साथी

17.4.1 लेखिका परिचय

छायावाद चतुष्टय के नाम से प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा प्रसिद्ध हैं। महादेवी वर्मा काव्यमय व्यक्तित्व से सम्पन्न थी। वे जीवन की कृत्रिमताओं से मुक्त उन्मुक्त हंसनेवाली एवं शुभ व उज्ज्वल नारी थी।

26 मार्च 1907 को होली के शुभ दिन पर उत्तरप्रदेश के फरूखाबाद जिले में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ था। इनका परिवार सुसम्पन्न व सुशिक्षित था लेकिन इस परिवार में लगभग सात पीढ़ियों तक कन्याएं जन्म के साथ मार-डाली जाती थी। दो सौ सालों के बाद कन्या के रूप में इनका जन्म हुआ था अतः इनके बाबू बांके बिहारी जी ने नाम महोदवी (घर की देवी) रख दिया। महादेवी वर्मा ने स्वयं इसका उल्लेख किया है ''जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर एक कोने से दूसरे कोने तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। ''महोदेवी वर्मा के हृदय में बचपन से ही जीवमात्र के प्रति दया थी, करूणा भावना थी। उनके रेखाचित्रों से बाल्य जीवन की झांकिया मिल जाती है। अतीत के चलचित्र के पहले तीन संस्मरणों में 'रामा', 'भाभी' तथा 'बिन्दा' का सम्बन्ध इनके बाल्यजीवन से है। महादेवी वर्मा की शादी बचपन में मात्र 9 वर्ष की अवस्था में कर दी गई थी। परन्तु इन्होंने अपनी पढ़ाई 1932 तक जारी रखी और प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. संस्कृत विषय में उत्तीर्ण किया। बाद में प्रधानाचार्य के रूप में शिक्षा क्षेत्र की सेवा में लग गईं।

होली के दिन जन्मी महादेवी का व्यक्तित्व होली की विविधता और रंगमयता से भरा था। इनके व्यक्तित्व में संवेदना, दृढ़ता व आक्रोश का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे विदुषी, अध्यापिका, कवि, गद्यकार, चित्रकार, कलाकार व समाजसेवी के रूप में हमारे सामने आती हैं। अध्ययनशील व संवेदनशील मनोवृत्ति, सफाई व स्वच्छता प्रिय, गंभीरता व धैर्य इनमें विशिष्ट गुण थे।

महादेवी वर्मा 1952 को उत्तर प्रदेश की विधान परिषद की सदस्य मनोनीत की गई। महादेवी को कई पुरस्कार व सम्मान से नवाजा गई। महादेवी की रचनाएं आरम्भ काल से अर्थात् 1930 से 1975 तक साहित्य जगत को आकर्षित करती रहीं। भारत सरकार द्वारा इन्हें मरणोपरांत 'पद्य विभूषण' उपाधि से अलंकृत किया गया। महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य जगत की प्रसिद्ध कवयित्री और उल्लेखनीय गद्य लेखिका थीं। उन्हें नीरजा कृति पर 1933 में सेकसरिया पुरस्कार मिला। 1944 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'मंगलाप्रसाद' पुरस्कार और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'विशिष्ट साहित्य पुरस्कार' सन् 1973 को प्रदान कर इनकी सेवाओं को सम्मानित किया गया। 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय और 1980 को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट. की उपाधि दी गई। 1982 में लखनऊ के हिन्दी संस्थान द्वारा 'भारत-भारती' पुरस्कार प्रदान किया गया। 1983 को उनके काव्य संग्रह 'यामा' और 'दीपशिखा' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने पुरस्कार से वर्मा जी का सम्मान किया। 11 सितम्बर 1987 को महादेवी का निधन हुआ था।

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके इन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर इनका अपना विशाल परिवार व उनका पोषण सब के वश की बात नहीं है। गायें, हिरण, गिलहरी, बिल्लियां, खरगोश, मोर, कबूतर तो इनके चिरसंगी रहे। वृक्ष, पुष्प, लताएं इनकी ममता के आगोश में पले-बढ़े थे। परिवार के नौकर पारिवारिक सदस्य ही थे।महादेवी वर्मा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का परिचय सुमद्रा कुमारी चौहान, कृष्णा, हरिसिंह (जवाहरलाल नेहरू

की बहन), सुमित्रानन्दन पंत, निराला, गोपीकृष्ण गोपेश, महात्मा गांधी जैसी विभूतियों से था। बचपन से ही महादेवी वर्मा जी का स्वभाव रहा कि इन्होंने अपने जीवन-विकास के लिए जो उचित और उपयुक्त समझा सो किया, हठ और भीषण विद्रोह के साथ किया। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा ने शायद इनको पारिवारिक जीवन व गृहस्थ से दूर रहने की प्रेरणा दी होगी। व्यक्तित्व में करूणा का अंश और भीतर के द्वन्द्व का समन्वय करने में सफलता इसीलिए प्राप्त हुई। महादेवी वर्मा अत्यन्त सरल व विनम्र, गंभीर व महान हृदया थी।

जीवन और साहित्य के पट में इतने विभिन्न रंगी सूत्रों का सम्मिलन बहुत ही विरल होता है। रहस्यवादी कवि, यथार्थवादी गद्यकार, समन्वयवादी समालोचक होने के साथ ही वे अद्वितीय रेखाचित्रकार, संस्मरण लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबंधकार, उच्चकोटि की चित्र कर्त्रा और प्रबुध समाज सेविका तथा राष्ट्रीय संस्कृति की संरक्षिका थीं। इनके रचनात्मक कार्यों के प्रतीक प्रयाग महिला विद्यापीठ और साहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थायें और पाठशालाएँ हैं। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में इनके व्यक्तिव की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है।

कृतित्व

विद्यार्थी जीवन में ही महोदेवी वर्मा ने कविताएं लिखनी शुरू कर दी थी। प्रारम्भिक कविताएं छन्दबद्ध थीं और 'रोला', 'हरिगीतिका' छन्द में लिखी गईं। महादेवी वर्मा की काव्य कृतियां नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1935), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), सप्तपर्णा (अनुदित)(1966), हिमालय (1963), अग्निरेखा (1980) है। महादेवी का प्रथम काव्य संग्रह नीहार है। नीहार में जीवन संसार की नश्वरता, वेदना व करूणा में खो जाने की इच्छा है। 'रश्मि' कविता संकलन में कवयित्री ने अतृप्ति, अभाव और दुख आदि को मनुष्य के जीनव का मौलिक सत्य माना है। सांध्यगीत में उनकी कविताओं में उपासना का भाव है। विरह का अभिशाप वरदान के रूप में है और विरह व अभाव आनन्द देने वाला है। दीपशिखा महादेवी के चित्रमय काव्य का मूर्त रूप है। इन गीतों में उनके निर्भय व स्वाभिमानी भावना का परिचय मिलता है जैसे ''पंथ होने दो अपरिचित, प्राण, रहने दो अकेला''- इसी तरह ''तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देखलूं उस पार क्या है?'' 'सप्तपर्णा' संकलन संस्कृति और पाली भाषा के साहित्य के कुछ चुने हुए अशों का अनुवाद है। 'अग्निरेखा में' दीपक को प्रतीक मानकर रचना की गई है।

बाल कविताएं -

बाल कविताओं के दो संग्रह छपे हैं (क) ठाकुर जी भोले हैं (ख) आज खरीदेंगे हम ज्वाला। ठाकुर जी बोले है संग्रह बच्चों के भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है -

ठण्डा पानी से नहलाती
ठण्डा चन्दन इन्हें लगाती
इनका भोग हमें दे जाती
फिर भी कभी नहीं बोलें है
माँ के ठाकुर जी भोले हैं।

महादेवी की गद्य कृतियां :-

अतीत के चलचित्र (1941), श्रृंखला की कड़ियां (1942), स्मृति की रेखाएं (रेखा चित्र)(1943), पथ के साथी (संस्मरण)(1956), क्षणदा (निबन्ध)(1956), साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध (1960), संकल्पिता (आलोचना)(1963), मेरा परिवार (पशु-पक्षी संस्मरण)(1971) और चिन्तक के क्षण (1986) आदि महादेवी वर्मा द्वारा रचित गद्य रचनाएं हैं।

17.4.2 कृति परिचय

महादेवी वर्मा के संस्मरण की प्रसिद्ध पुस्तक 'पथ के साथी' का प्रकाशन 1956 ईसवी में हुआ था। 'पथ के साथी' में महादेवी वर्मा ने अपने साथी साहित्यकारों की सृजन यात्रा का स्मरण किया है। पथ के साथी में महादेवी वर्मा ने सबसे पहले रवीन्द्रनाथ टैगोर को स्मरण किया है। इसी कम में बाद में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सियारामशरण गुप्त को स्मरण किया है। पथ के साथी में महादेवी वर्मा ने जिस कलात्मकता, संयम एवं गतिशीलता में अपने साथी साहित्यकारों को स्मरण किया है वह अद्भुत है। डा. रामचन्द्र तिवारी ने इस रचना पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – "महादेवी ने उन स्मृति-संदर्भों को सँजोकर जिनमें उनके अग्रज और छवियाँ अंकित की हैं वे अपनी संश्लिष्टता में अन्यतम हैं। बाहत आकार-प्रकार, उनमें लक्षित होने वाली जीवन-संघर्ष, जीवन-संघर्ष की तीव्रता के सामाजिक कारण और सामाजिक दबाव के कारण व्यक्तित्व में उभरने वाली मानसिक असंगतियाँ यह सब दबे-उभरे रूप में साकार हो गये हैं। यही नहीं महादेवी ने अपने पथ के साथियों के साहित्य में उनके व्यक्तित्व की असंगतियों का सामन्जस्य भी ढूँढ़ने की चेष्टा की है और वे प्राय: सफल रही हैं। इससे उनकी तलस्पर्शी दृष्टि और मनोवृत्ति विश्लेषिणी प्रज्ञा का परिचय मिलता है। महादेवी की चित्र-व्यन्जना का चरम विकास 'पथ के साथी' में लक्षित होता है।

17.5 मूल पाठ

हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों-ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं। पर जिनसे ऐसा संबंध नहीं होता वे फीके होते-होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।

मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे सख्य का चित्र, पहली कोटि में ही रखा जा सकता है, क्योंकि इतने वर्षों के उपरान्त भी उनकी सब रंग-रेखायें अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, क्या तुम कविता लिखती हो? दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं

तरल हो कर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति-अस्वीकृति की संधि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो! दिखाओं अपनी कापी' और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में अपने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबंदियाँ अनायास पकड़ में आ गई। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकड़ी और वह हर कमरे में जा-जाकर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।

उस युग में कविता रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनने वालों के मुख की रेखायें इस प्रकार वक्रकुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटु-तिक्त पेय पीना पड़ता हो।

ऐसी स्थिति में गणित जैसे गंभीर महत्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था। इससे बढ़कर कागज का दुरूपयोग और विषय का निरादर और हो ही क्या सकता था। फिर जिस विद्यार्थी की बुद्धि अंकों के बीहड़ वन में पग-पग पर उलझती है उससे तो गुरू यही आशा रखता है कि वह हर साँस को अंक जोड़ने-घटाने की क्रिया बना रहा होगा। यदि वह सारी धरती को कागज बना कर प्रश्नों को हल करने के प्रयास से नहीं भर सकता तो उसे कम से कम सौ-पचास पृष्ठ, सही न सही तो गलत प्रश्न-उत्तरों से भर लेना चाहिए। तब उसकी भ्रान्त बुद्धि को प्रकृतिदत्त मान कर उसे क्षमा दान का पात्र समझा जा सकता है, पर जो तुकबन्दी जैसे कार्य से बुद्धि की धार गोंठिल कर रहा है वह तो पूरी शक्ति से दुर्बल होने की मूर्खता करता है, अतः उसके लिए न सहानुभूति का प्रश्न उठता है न क्षमा का।

मैंने होंठ भींच कर न रोने का जो निश्चय किया वह टूटा तो न टूटा। अन्त में मुझे शक्ति परीक्षा में उत्तीर्ण देख सुभद्रा जी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छी तो लिखती हो। भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है! 'मेरी चोट अभी दुख रही थी, परन्तु उनकी सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखे सजल हो आईं 'तुमने सब को क्यों बताया? का सहास उत्तर मिला 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।'

बहिन सुभद्रा का चित्र बनना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिणी दीपशिखेव' बनकर उसे असाधारण कर देती है। एक-एक कर के देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जाएगा, परन्तु सब की समग्रता में जो उद्भासित होता था, उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था।

मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखे, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और

दृढ़ता सूचक ठुड्ढी.......सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे। पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छन्द था, उसका पता तो तब मिलता था, जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के बीच में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी। 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हँसी निश्चय ही असाधारण थी। माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हँस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था। वह संक्रामक भी कम नहीं थी क्योंकि दूसरे भी उनके सामने बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे।

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढ़ने जायेगी।

दूसरे दिन वह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गई। गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में काँटे चुभ गए, कँटीली झाड़ियों में कपड़े उलझा कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अँधेरे करील-वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेहभरी बाहें फैलाए हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तौला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो। उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैय्या के सुख का अनुभव करती थी।

एक बार भाई लक्ष्मणसिंह जी ने मुझसे सुभद्रा जी की स्नेहभरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझ से कभी माँगने का अधिकार माँग लिया था महादेवी! यह ऐसे ही होशियार हैं, माँगती तो वचन-भंग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं माँगा तो इनके अहंकार को ठेस लगती है।'

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरंभ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं। यही सोचकर विस्मय होता है। कारागार में जो सम्पन्न परिवारों की सत्याग्रही मातायें थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा-मिष्ठान आता रहता था। सुभद्रा जी की आर्थिक परिस्थितियों में जेल-जीवन का एक और क्लास समान ही था। एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलने वाली महिला-कैदियों से थोड़ी-सी अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भून कर बालिका को खिलाया। घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी देकर बहलाना पड़ा था! पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियाँ को अनुकूल बनाने की लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छंद लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथती थीं। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं। आँगन लिपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन के भिन्न-भिन्न छोरों से लीपना आरम्भ करते थे। लीपने में हमें अपने से बड़ा कोई विशेषज्ञ मध्यस्थ नहीं प्राप्त हो सका, अत: प्रतियोगिता का परिणाम सदा अघोषित ही रह गया पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकान्त तन्मयता केवल उसी गृहणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं। उस छोटे से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहीत किया। छोटे-बड़े पेड़, रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बच्छे आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच से उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशील नारी जानती थी कि काँटो का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है तभी वे टूट कर दूसरों को बेचने की शक्ति खोते हैं। परीक्षायें जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती हैं तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

नारी के हृदय में जो गंभीर ममता-सजल वीर-भाव उत्पन्न होता है वह पुरूष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरूष अपने व्यक्तित्व या समूहगत रागद्वेष के लिए भी वीर धर्म के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए रूद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष ही भीमाकृति चंडी,वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबारक अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर-रस की घिसी-पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतर-व्यापिनी निष्ठा से जुड़ा है जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं मानी जा सकती। इसी से जहॉं दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ। थक पर बैठने वाला अपने न चलने की सफाई खोजते-खोजते लक्ष्य पा लेने की कल्पना कर सकता है, पर चलने वाले को इसका अवकाश कहाँ!

जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास ही उनके काव्य का प्राण है:

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास प्रेम साहस हैं।
जीवन के साथी मेरे।

मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब मधुर तिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटती, बहुत कुछ वैसा ही आदान-सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल-कठिन, साह्य-असह्य अनुभवों का परिपाक दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था। उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चमत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था तब वे कहती हैं, 'मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरूष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरूष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरूद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, 'समाज और परिवार व्यक्ति को बन्धन में बाँधकर रखते हैं। ये बन्धन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बन्धन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किए गये हों, हैं बंध नही, और जहाँ बन्धन है वहाँ असन्तोष है तथा क्रान्ति हैं।'

परंपरा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्त्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बाँधती है, 'चिर-प्रचलित रूढ़ियों और चिर-संचित विश्वासों को आघात पहुँचाने वाली हलचलों को हम देखना-सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझ कर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किन्तु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रांति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।'

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अंत भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रहीं, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतार कर उसे सृजन का रूप दिया था।

सुभद्रा जी के अध्ययन का क्रम असमय ही भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो नहीं मिल सकी, पर अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो सीखा उनकी प्रतिभा ने सर्वथा निजी विशेषता दे दी है।

भाषा,भाव,छंद की दृष्टि से नये, 'झांसी की रानी' जैसे वीर-गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थवादी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

ऐसी प्रतिभा व्यावहारिक जीवन को अछूता छोड़ देती तो आश्चर्य की बात होती।

पत्नी की अनुगामिनी, अर्धांगिनी आदि विशेषताओं को अस्वीकार कर उन्होंने भाई लक्ष्मणसिंह जी को पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर अनुगमन किया जा सके।

अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस चर-चर कर देने वाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।

उस समय बच्चों के लालन-पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता-पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुँच जाते थे। सुभद्रा जी का कवि-हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था! अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देख कर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरूद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी माँ को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान ऐसा ही अलिखित और अटूट था।

अपनी संतान के भविष्य को सुखमय बनाने के लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक-भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरूद्ध उन्होंने घोषणा की, 'मैं कन्यादान नहीं करूँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है ? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी नहीं रहेगी ? उस समय तक किसी ने, और विशेषतः किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परंपरा-विरूद्ध बात नहीं कही थीं।

देश की जिस स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अँगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी जब उन्होंने

अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनक उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववन्द्य बापू की अस्थिविसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँची। पर अन्य सम्पन्न परिवारों की सदस्यायें मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थिप्रवाह के उपरांत संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था । उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में सम्मिलित हुई।

सातवीं और पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह ने ऐसी अमिट लक्ष्मण-रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ी होने के कारण मैं अनायास ही सब की देखरेख और चिंता की अधिकारिणी, बन गई थी। परिवार में जो मुझसे बड़े थे उन्होंने भी मुझे ब्रह्मसूत्र की मोटी पोथी में आँखे गड़ाये देखकर अपनी चिंता की परिधि से बाहर समझ लिया था। पर केवल सुभद्रा पर न मेरी मोटी पोथियों का प्रभाव पड़ा न मेरी समझदारी का। अपने व्यक्तिगत संबंधों में हम कभी कुतूहली बाल-भाव से मुक्त नहीं हो सके। सुभद्रा के मेरे घर आने पर भक्तिन तक मुझ पर रौब जमाने लगती थी। क्लास में पहुँच कर वह उनके आगमन की सूचना इतने ऊँचे स्वर में इस प्रकार देती कि मेरी स्थिति ही विचित्र हो जाती 'ऊ सहोदरा विचरि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा'। एम0ए0, बी0ए0 के विद्यार्थियों के सामने जब एक देहातिन बुढ़िया गुरू पर कर्त्तव्य-उल्लंघन का ऐसा आरोप लगाने लगे तो बेचारे गुरू की सारी प्रतिष्ठा किरकिरी हो सकती थी। पर इस अनाचार को, रोकने का कोई उपाय नहीं था। सुभद्रा जी के सामने न भक्तिन को डाँटना संभव था न उसके कथन की अपेक्षा करना। बँगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानमती का पिटारा खोले बैठी हैं और उसमें से अद्भुत वस्तुएँ निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली सुनहरी चूड़ियाँ आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा! पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता था।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछती, 'पसंद हैं ? मैंने दो तुम्हारे लिए दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात एक मिनिट और हँसी पाँच मिनट का अनुपात रहता था। इस से प्रायः किसी सभा-समिति में जाने के पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था। एक दूसरे की ओर बिना देखे गंभीर भाव से बैठे रहने की, प्रतिज्ञा करके भी वहाँ पहुँचते ही एक-

न-एक वस्तु या दृश्य सुभद्रा के कुतूहल मन को आकर्षित कर लेता और मुझे दिखाने के लिए वे चिकोटी तक काटने से नहीं चूकतीं। तब हमारी शोभा-सदस्यता की जो स्थिति हो जाती थी, उसका अनुमान सहज है।

अनेक कवि-सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अंत तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरूद्ध कोई आग्रह नहीं किया। आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परंतु मेरा प्रश्न उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जायेगी, नहीं जायेगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा, ईर्षा-द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक दूसरे के साहित्य-चरित्र-स्वभाव संबंधी निंदा-पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी।

वसंत पंचमी को पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भर कर सुभद्रा ने विदा ली। उनके लिए किसी अन्य विदा की कल्पना ही कठिन थी।

एक बार बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। मैंने कहा, 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियाँ गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओं तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनंद अच्छा है या नहीं।

उस दिन जब उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल-उज्जवल अंचल में समेट लिया तब नीलम-फलक पर श्वेत चंदन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर-मुख मुस्कराता जान पड़ा।

'यही कहीं पर बिखर गई वह छिन्न विजय-माला-सी!

17.6 पाठ विश्लेषण

पाठ विश्लेषण का तात्पर्य है – मूल पाठ की सामाजिक उपयोगिता की जाँच करना है या मूल्यांकन करना। पाठ विश्लषण तब ज्यादा प्रमाणिक हो उठता है जब मूल पाठ पाठक के सामने हो और आलोचक उसकी व्याख्या कर रहा हो। इस विश्लेषण की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है इसमें पाठक को आलोचक की दृष्टि आरोपित रूप में ग्रहण नहीं करनी पड़ती। मूल पाठ का उपलब्धता से पाठक स्वयं पाठ विश्लेषण कर सकता है या आलोचक के पाठ विश्लषण की जाँच कर सकता है। आलोच्य संस्मरण महादेवी वर्मा की लेखनी की सजीवता का

सुन्दर उदाहरण है। आइए हम आलोच्य संस्मरण के पाठ विश्लेषण द्वारा उसकी अंतर्निहित संभावना को समझें।

17.6.1 अंतर्वस्तु के धरातल पर

संस्मरण के प्रारम्भ में ही महादेवी वर्मा ने संस्मरण लिखने के कारण का जिक्र करते हुए लिखा- "शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते है।" स्पष्ट है कि संस्मरण उन्हीं पर लिखा जा सकता है जिनसे रागात्मक संबंध लेखक का रहा हो। लेखिका ने संस्मरण की शुरूआत-नायिका लेखिका से दो कक्षा आगे है, इस थोड़े से बड़े होने का एहसास उसे है और स्वयं लेखिका को भी हैं। स्नेहवश प्रश्न–प्रतिप्रश्न के बीच-'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।' विकसित होता है। लेखिका ने सुभद्रा जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – "अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था।" सुभद्रा जी की यह अडिगता संस्मरण में जगह-जगह दिखती है। "नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुत: जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं।"

"उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं।" सुभद्रा जी के जीवन संघर्ष के साथ ही उनके संतुलन और संयम का चित्र भी लेखिका ने खींचा है – "घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है।" इसी प्रकार सुभद्रा जी कर्मठ एवं सहज जीवन का चित्र महादेवी ने इस प्रकार खींचा है –"उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठकर वे कोमल और ओज भरे छन्द लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथतीं थी। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं।" सुभद्रा कुमारी चौहान को प्राय: वीररस की कवयित्री मानकर इतिश्री कर दिया जाता है। इस प्रव़ृत्ति से असंतोष प्रकट करते हुए महादेवी वर्मा ने लिखा है –"उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया है।" अपने इस कथन को पुष्ट करने के लिए लेखिका ने सुभद्रा जी के मूल वक्तव्य भी उद्धत किए हैं। इसी प्रकार लेखिका ने सुभद्रा जी बाल मनोविज्ञान की समझ को भी सराहा है। सुभद्रा जी न केवल श्रेष्ठ कवयित्री थीं, वरन् सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में भी अग्रणी थीं – "पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरूद्ध उन्होंने घोषणा

की, "मैं कन्यादान नहीं करँगी। क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकार है ? उस समय तक किसी ने, और विशेषत: किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परम्परा-विरूद्ध बात नहीं कही थी।" इसके अतिरक्ति संस्मरणकार ने सुभद्रा जी के उनके बाल स्वभाव एवं सदाशयता का परिचय जगह-जगह दिया है।

17.6.2 शिल्प के धरातल पर

संस्मरण की भाषा एवं शिल्प से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कथ्य को सघन, संक्षिप्त एवं प्रभावी रूप में प्रस्तुत कर पा रहा है या नहीं। महादेवी वर्मा मूलत: कवियत्री हैं, इसलिए उनकी संस्मरण की भाषा भी कहीं-कहीं काव्यात्मक अलंकरण से अलंकृत हो गई है, जो संस्मरण को और अधिक प्राणवान और जीवंत बनाने में सफल हुआ है। महादेवी वर्मा के भाषा की विशेषता जहाँ सघनता से युक्त है वहीं वह अपनी केंद्राभिसारी प्रभावान्विति में भी सफल है। आलोच्य पंक्तियों में एक ओर लेखिका ने जहाँ संस्मरण की मूल विशेषता को लक्षित किया है वहीं घटना के समय की शुरूआत का संकेत भी कर दिया है – "हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों–ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं।" इन पंक्तियों में लेखिका की भाषा सघनता एवं संकेतात्मकता से तो परिपूर्ण है ही इसके साथ ही वह उसकी भाषा की विशेषताओं को भी इंगित कर रही है। लेखिका की भाषा में एक ओर जहाँ तत्सम शब्दों की बहुतायत है (वार्धम्य, शैशवकालीन, लक्षित, मधुमक्षिका, मधुर, तिक्त इत्यादि) वहीं वह लोक रंगों से भी अछूती नहीं है – 'ऊसहोदरा विचरि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फरसत नाहिन बा।'

महादेवी वर्मा चित्र उकेरने की कला में सिद्धस्त हैं। वह कवयित्री होने के साथ-ही-साथ रेखाचित्रकार भी हैं, जिससे उनके संस्मरण भी जीवंत बन पड़े हैं। सुभद्रा जी का परिचय देने में उनकी चित्रात्मक शैली देखते ही बनती है – "मझोल कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी.....सब कुछ मिला कर एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे।" संस्मरण चूँकि पूर्वदीप्ति शैली की रचना है, अत: इस विधा में वही सफल हो सकता है जिसमें चित्रात्मक भाषा में, अपनी स्मृति को पात्रानुकूल ढ़ालने की क्षमता हो। महादेवी वर्मा ने परिस्थितिजन्य एवं पात्रानुकूल भाषा-शिल्प का परिचय देकर श्रेष्ठ संस्मरण लिखे हैं और आलोच्य संस्मरण भी उपयुक्त गुणों से परिपूर्ण है।

17.7 सारांश

इस इकाई का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- संस्मरण विधा आत्मीयता पूर्ण ढंग से संपर्क में आये हुए व्यक्तियों की स्मृति की रचनात्मक प्रस्तुति है।
- 'पथ के साथी' रचना अपनी आत्मीयता एवं सहज संप्रेष्य शैली में विशिष्ट रचना है।
- सुभद्राकुमारी चौहान न केवल कवयित्री रही हैं वरन् मनुष्यता के धरातल पर भी उनके व्यक्तित्व में महानता के तत्व रहे हैं।

17.8 शब्दावली

वार्धक्य	-	बुढापा
वक्र-कुंचित	-	टेढ़ी-मेढ़ी
कटु-तिक्त	-	कड़वा और तीखा
कृश	-	कमजोर
संचारिणी दीपशिखा		निरंतर जलने वाली दीये की लौ
भाव स्नात	-	भाव से सराबोर
कीकर	-	बबूल
आलोकवसना	-	प्रकाश के वस्त्र पहने हुए

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) रिक्त स्थान पूर्ति

1. 1907
2. यामा
3. कवयित्री
4. 1956
5. पद्मसिंह शर्मा

(2) सत्य/असत्य

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य

4. असत्य
5. सत्य

(3) सुमेलित कीजिए –

स्मृति की रेखाएँ	- महादेवी वर्मा
पद्मपराग -	पद्म सिंह शर्मा
संस्मरण -	बनारसी दास चतुर्वेदी
वे दिन वे लोग -	शिवपूजन सहाय
औरों के बहाने -	राजेन्द्र यादव
स्मरण को पाथेय बनने दो	- विष्णुकांत शास्त्री

17.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिवारी, रामचन्द्र, हिंदी का गद्य साहित्य – विश्वविद्यालय प्रकाशन।
2. वर्मा, धीरेन्द्र – हिंदी साहित्य कोश 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

17.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नगेन्द्र, डॉ – महादेवी वर्मा
2. मानव, विश्वम्भर – महादेवी वर्मा

17.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य की रचना शैली पर प्रकाश डालिए।
2. संस्मरण और अन्य गद्य विधाओं का पारस्परिक साम्य/वैषम्य निरूपित कीजिए।

इकाई 18: नैनीताल में(राहुल सांकृत्यायन) : पाठ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 यात्रावृत्त का पाठ: नैनीताल में
18.4 यात्रावृत्त का सार
18.5 संदर्भ सहित व्याख्या
18.6 स्थानीयता व तथ्यात्मकता
18.7 आत्मीयता व वैयक्तिकता
18.8 कल्पनाशीलता व रोचकता
18.9 संरचना शिल्प
18.9.1 भाषा
18.9.2 शैली
18.10 प्रतिपाद्य
18.11 सारांश
18.12 पारिभाषिक शब्दावली
18.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
18.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.16 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

आप इस इकाई में राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृत्त का अध्ययन करने जा रहे हैं। आपका जन्म 9 अप्रेल, 1893 ई. में उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के पंदहा ग्राम में हुआ। इनका मूल नाम केदारनाथ पाण्डे था। ये सन् 1930 में श्री लंका गए और बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर रामोदर साधु से 'राहुल' हुए और सांकृत्य गौत्र से सांकृत्यायन कहलाए। ये जन्मजात घुमक्कड़ थे और उनके जीवन का अधिकांश भाग भ्रमण में व्यतीत हुआ। आपकी यात्राओं में श्रीलंका, तिब्बत, जापान, रूस तथा हिमालय आदि उल्लेखनीय हैं। आपने सन् 1937 में रूस के लेनिनग्राद में संस्कृत अध्यापक की नौकरी भी की।

राहुल जी की घुमक्कड़ प्रवृत्ति ने हिन्दी यात्रा साहित्य को अनेक अनमोल यात्रावृत्त दिए हैं। इन यात्रावृत्तों में स्थान विशेष के भूगोल, इतिहास, समाज, और संस्कृति की झलक दृष्टव्य है। उन्होंने 'तिब्बत में सवा वर्ष'(1933), 'मेरी यूरोप यात्रा'(1935), 'मेरी तिब्बत यात्रा'(1937), 'मेरी लद्दाख यात्रा'(1939), 'यात्रा के पन्ने', 'लंका', 'जापान', 'ईरान', 'किन्नर देश में'(1948), 'राहुल यात्रावलि'(1949), 'रूस में पच्चीस मास'(1952), 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में', 'हिमालय परिचय', 'कुमाऊँ परिचय', 'गढ़वाल परिचय', तथा 'दार्जीलिंग परिचय आदि यात्रा साहित्य की रचना की। इसके अतिरिक्त आपने उपन्यास, कहानी संग्रह, आत्मकथा, जीवनी, आदि भी लिखी, जिनका विवरण निम्नवत् है:-

उपन्यास: 'सिंह सेनापति'(1944), 'जय यौधेय(1944), 'भागो नहीं दुनिया बदलो', 'विस्मृति के गर्भ में'।

कहानी संग्रह: 'सतमी के बच्चे', 'वोल्गा से गंगा'(1944), 'बहुरंगी मधुपुरी', 'कनैला की कथा'।

आत्मकथा: 'मेरी जीवन यात्रा'(पाँच खण्ड)।

जीवनी: 'स्तालिन'(1953), 'बचपन की स्मृतियाँ'(1953) 'कार्ल मार्क्स'(1954), 'लेनिन'(1954),

'माओ चे तुंग'(1956), 'मेरे असहयोग के साथी'(1956)।

आपने विपुल साहित्य हिन्दी को दिया, हिन्दी यात्रा साहित्य को परिणाम और विविधता से समृद्ध किया। जीवन के अंतिम वर्षों में आप दार्जिलिंग(पश्चिमी बंगाल) में रहने लगे, वहीं 14 अप्रेल सन् 1963 को आपका निधन हो गया।

18.2 उद्देश्य:

इस इकाई में आप राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृत्त 'नैनीताल में' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- यात्रावृत्त की विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे।
- यात्रावृत्त के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।
- यात्रावृत्त के तत्वों के आधार पर प्रस्तुत यात्रावृत्त की समीक्षा कर सकेंगे।
- भाषा और शैली की दृष्टि से यात्रावृत्त पर विचार कर सकेंगे।
- यात्रावृत्त के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे।

18.3 यात्रावृत्त का पाठ: नैनीताल में

डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार से पहले ही पत्र-व्यवहार हो चुका था। वह भी हमारे आजकल आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, अर्थात् रामगढ़ के लिए हम निश्चिन्त नहीं थे। नैनीताल का श्रृंगार वहाँ का ताल है, जो किसी भी पर्वतीय विलासपुरी में नहीं है। बस का अड्डा तल्ली (निचले) ताल में है। यहाँ भी बाजार है और बड़ा डाकखाना भी यहीं है। कुलियों पर सामान उठवाकर ताल को बाईं छोड़ते हम सड़क के आगे बढ़े। थोड़ी ही दूर आगे पहाड़ की ओर दूकानें और होटल शुरू हो गए। यहीं सिनेमा भी है। ताल के परले छोर को मल्ली(उपरला) ताल कहते हैं। होटल में पहुँचने से पहले डॉक्टर साहब के ज्येष्ठ पुत्र श्री विश्वरंजन जी मिले। फिर डॉक्टर साहब भी आए। सामान गोदाम में और हम दोनों रहने के कमरे में चले गए।पहली ही नजर देखने पर हमने लिख मारा- ''निश्चय ही नैनीताल के सामने शिमला और दार्जिलिंग कुछ भी नहीं हैं।'' लेकिन साथ ही यह भी लिखा है-''कमी है, तो यही कि यह हिमालय के बाहरी क्षेत्र में है।'' लेकिन, इससे भी बड़ी कमियाँ नैनीताल की मालूम हुई-यहाँ आदमी को मालूम होता है कुएँ में है, जिसके किनारे पहाड़ की विशाल दीवारें खड़ी हैं।

11 मार्च को किराये का बंगला देखने गए। अँग्रेजों के जाने के बाद इन विलासपुरियों पर साढ़े साती सनीचर का कोप है। नैनीताल में अँग्रेज किराए के बंगलों में रहते थे, जिन्हें भारतीयों ने अँग्रेजों के आराम की दृष्टि से ही बनाया था। जिन बंगलों को किराये पर चढ़े वर्षों हो गए, वह जीर्ण, गन्दे, पुराने या टूटे फर्नीचर वाले हों, तो क्या ताज्जुब? अल्मा कॉटेज और ग्लेनमोर दो बंगले अच्छी हालत में थे, लेकिन उनमें आठ-आठ, नौ-नौ कमरे थे, जिनकी सफाई के लिए एक अलग आदमी चाहिए। ग्लेनमोर बाजार से एक मील पर अवस्थित है। कमला को पसन्द आया।

12 मार्च को उसके मालिक के साथ ग्लेनमोर बंगला देखने गए। अधिकांश बंगलों के मालिक कुमाउनी शाह लोग हैं। यह व्यवसायी बहुत कुछ नीचे के अग्रवाल बनियों से हैं। ग्लेनमोर बहुत बड़ा बंगला था, इसमें छः बड़े-बड़े कमरे थे। फर्नीचर भी था। हमने उसके गुण ही देखे, उसी पर मुग्ध होकर कह दिया, दो कमरे कल तैयार कर दिए जाएँ। किराया हजार ठीक हुआ, लेकिन शाहजी ने कहा, आदमी ज्यादा रहेंगे, तो किराया बढ़ा देंगे।
13 मार्च को फिर बँगलों की खोज में निकले। सबेरे स्नाउडन गए। स्नाउडन की दो-मंजिला इमारत और उसके अच्छे साफ-सुथरे कमरे हमें बहुत पसन्द आए। चौकीदार को कह दिया कि मालिक से पूछो, यदि नौ सौ रुपया वार्षिक पर देना चाहें, तो ले लेंगे। उधर हीरालाल जी शाह को ग्लेनमोर के स्वामी के पास उतने ही किराए पर देने के लिए टेलीफोन करने को कहा। दोपहर बाद चन्द्रलाल शाह के बंगलों, डलहौसी विला, डलहौजी कॉटेज, हटन हाल और हटन कॉटेज देखने को गए। 14 मार्च को तीन बँगलों का आफर आया, लेकिन सबसे पहले ग्लेनमोर से। तेरह कुलियों के साथ हम 2 बजे ग्लेनमोर पहुँचे। 6 बड़े-बड़े कमरे जरूर थे, लेकिन शीशे सबके टूटे हुए थे, चिटकनियों और काँचों को खास तौर से तोड़ा गया था। शाम को सोने के लिए दरवाजा बन्द करने लगे, तब मालूम हुआ कि यहाँ तो सभी चीजे खुली हुई हैं और भीतर घुसने की सारी बाधाएं दूर करके रखी गई हैं।

रात को ही बँगले का छोड़ जाने का निश्चय कर लिया। अभी एक ही रात रहे थे, और बँगले के बारे में लिखा-पढ़ी नहीं हुई थी। तुरन्त दूसरी जगह जाने का प्रबन्ध करना पड़ा। चाय पीकर एक चिट्ठी श्री हीरालाल शाह को मकान के नापसन्द होने के बारे में लिखी और स्वयं श्री बाँकेलाल कंसल के पास पहुँचे। ओक लाज में पहुँचे। वह इस सारे बँगले के किरायेदार थे, नीचे उनका परिवार रहता था, ऊपर एक भाग में गुप्ताजी ओवरसियर थे, और दूसरे भाग में दो कमरे और बराण्डा खाली था।

नए मकान में वैसे भी आदमी को कुछ अड़चने मालूम होती हैं। इस मकान के गुण के लिए यही कह सकते हैं कि ग्लेनमोर से निकलने के बाद इसने शरण दी। अब पुस्तकें लिखने में लगना था और कमला को इस साल साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा अवश्य देनी थी। अगले दिन हमने छः बक्सों की पुस्तकें निकाल कर जहाँ तहाँ रख दीं। अपने तो जैसे भी गुजारा कर सकते थे, लेकिन चिन्ता थी मेहमानों के आने पर क्या किया जायेगा। जो भी हो, अब नैनीताल में 16 जून तक के लिए हम ओक लाज के हो गए।

मसूरी ने बीच में आकर फिर हमारे दिमाग में अनिश्चिन्तता पैदा कर दी। नैनीताल के लिए आकर्षण नहीं रह गया। तो भी मकान तो किराए पर ले चुके थे, इसलिए उसकी सद्गति करानी जरूरी थी, और वर्षा के बाद ही यहाँ से चल सकते थे। आर्थिक स्थिति का पता अब हमें मालूम

होने लगा था, क्योंकि ''अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम'' की वृत्ति पर गुजारा नहीं हो सकता था।

मार्च का अन्त जाड़े का समय नहीं था, लेकिन साढ़े 6000 फुट ऊपर बसे नैनीताल (ओक लाज 7000 फुट) में अब भी जाड़ा था। 22 को पानी और ओला पड़ा। आडू, खुमानी, नाशपाती के फूल झड़ गये, अब उनमें फल आने की सम्भावना नहीं थी। 23 मार्च को सबेरे उठे, तो देखा सभी ऊँचे स्थान बर्फ से ढँके थे। हमारे बंगले के आसपास भी बर्फ थी, जो दोपहर तक पिघल गयी थी। सर्दी बहुत बढ़ गई थी। नैनीताल को अब ग्रीष्म राजधानी कहने में हमारे प्रभुओं को संकोच हो रहा था, क्योंकि अंग्रेजो के बहुत से दफ्तरों को लखनऊ से यहाँ भेजना बन्द कर दिया था। लेकिन, वह अभी आरम्भिक दिन थे, कांग्रेसी नेता आदर्शवाद के लिए शर्म करते भी झुकते थे। अभी उस समय के आने में कुछ देर थी, जब कि फिर मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्रियों को नैनीताल में फिर से बसाना था, और तब नैनीताल के भाग्य में कुछ परिवर्तन होना भी जरूरी था।अंग्रेजों के जाने से यहाँ के बंगलों की क्या दुर्गति हुई, इसके बारे में हम कुछ बतला आए हैं। दूर-दूर के बंगलों के दिन लौटेंगे, इसकी आशा नहीं थी। नैनीताल में बहुत से युरोपियन स्कूल थे, जो थोड़े से भारतीय लड़कों को भी ले लिया करते थे। अब उनमें से कितने ही बन्द हो चुके थे और कुछ को दूसरों ने लेकर अपनी संस्था खोली थी। बिड़ला विद्या मंदिर उन्हीं में से एक था।

हमारे निवास में मालिक से मरम्मत करने की आशा नहीं थी, और कुछ टूटे हुए शीशों से सर्दी और हवा भीतर पहुँच रही थी, इसलिए उन्हें अपने ही लगवाया। 26 मार्च को कुछ घण्टों तक बजरी पड़ती रही। ओला बर्फ जैसा कठोर होता है, और नरम पिलपिले ओले को बजरी कहते हैं, जिसके गिरने पर टीन की छत भड़भड़ाती नहीं और आदमी की खोपड़ी पर चोट नहीं पहुँचती। सर्द स्थानों में टेम्परेचर गिरने के साथ बरसता पानी बजरी के रूप में परिणत होता है, और कुछ सर्दी और बढ़ने पर वह हिम बन जाता है। अधिक सर्दी होने पर कणों के रूप में नहीं, बल्कि रूई के बड़े-बड़े फाहों के रूप में हिम हवा में तैरते हुए गिरने लगता है।

9 अप्रेल को श्री शीतलप्रसाद जी, बाँकेलालजी, उनके मझले भाई तथा दो-एक और भद्रजनों के साथ हम लड़िया कांठा गए। कांठा यहाँ चोटी को कहते हैं, जिसे कहीं कंठा भी कहा जाता है। लड़िया कांठा से कहीं ऊँची चोटी चीना पीक है। पर लड़ियाकांठा गिरिमेखला से हटकर है, जो उसका खास महत्व है। स्थान तीन मील पर होगा। हम लोग कोठे पर पहुँचे। अन्त का 15-20 गज का रास्ता बहुत खराब था। देखने के लिए लकड़ी की दर्शन-बैठक बनी हुई थी। बाँकेलाल जी के मझले भाई अब मैदानी नहीं रह गये थे। किसी भी कड़ी से कड़ी चढ़ाई में वह बकरे की तरह खट्-खट् चले जाते थे।इस समय अप्रेल के महीने में बुरांस(रोडंड्रन) के निरगंध पर सुंदर अतिरक्त वर्ण फूल बहुत खिले हुए थे। पर्वतीय तरूणियाँ कितनी ही जगहों पर इससे अपने बालों

का श्रृंगार करती हैं। लेकिन, कुमाऊं या गढ़वाल में मैदानी असर बहुत पड़ा है, इसलिए वहाँ की तरूणियों में यह शौक नहीं देखा जाता।

नैनीताल के निचले भाग से सामने पश्चिम की ओर देखने पर सबसे ऊँचा जो शिखर दिखाई देता है, वही चीना पीक है। यह अंग्रेजों का दिया हुआ नाम है। पहले यह निर्जन-सा स्थान था और केवल पशुपालक यहाँ करते थे। सिर्फ साल में एक दिन नैनी देवी के मेले के लिए झील के किनारे जंगल में मंगल हो जाता था। अंग्रेजों ने इस अद्भुत ताल का पता नेपाल से कुमाऊँ छीनने (1814) के बाद पाया। फिर यहाँ बंगले बनने लगे तथा धीरे-धीरे नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गया।23 अप्रेल को सर्वोच्च शिखर पर हमारे जाने की सलाह हुई। नैनीताल जाने वाले पिकनिक के लिए एकाध बार वहाँ जरूर आते हैं। सड़क से कितनी ही दूर जा गिरीमेखला में डाँडे को पार कर पगडण्डी पकड़ ऊपर शिखर पर पहुँचे। एक पत्थर पर सामने दिखाई देनेवाले हिमाच्छादित शिखरों के नाम लिखे हुए थे, जो रेखा की सीध में देखने से सामने दिखलाई पड़ते थे। आज हमारे दुर्भाग्य से अधिकतर शिखर बादल से ढँके थे। बदरीनाथ से जमुनोत्री(बन्दरपूँछ) तक के शिखर ही नहीं देख सकते, बल्कि पूर्व में नेपाल के शिखर भी सामने पड़ते हैं।

हम 6 आदमी थे। रास्ते भर चुहुल और विनोद होता गया। यहाँ बैठकर वनभोज हुआ। सामने नीचे की ओर ताल में नावों को दौड़ते और आगे मैदानी भूमि देखते रहे। सवा 6 बजे वहाँ से लौटे। दूसरे रास्ते से, जो केमल पीक(ऊँट-शिखर) की ओर से होकर आता है। चीना चुंगी तक हमें सड़क मिली। अब सूर्य भी डूब गया, और हमारे साथियों ने पगडण्डी पकड़ ली, जिसमें कितनी जगह सीधी खड़ी उतराई उतरनी थी। ऐसी ही जगह यदि पैर काँपने लगे, तो दोष क्या? जब सड़क पर पहुँचे, तो जान में जान आई। अन्धेरा हो जाने पर 8 बजे घर लौटे।

चन्द्रकांत जी कुल्लु से से लिख रहे थे कि मनाली में सेबों के बाग के साथ एक बहुत अच्छा ‘बंगला‘ बिक रहा है। मनाली की सुषमा मेरे लिए आकर्षक हो सकती थी, लेकिन कमला उसके लिए तैयार नहीं थी। नैनीताल से अब मन उचट ही गया था। डॉ0 सत्यकेतु के मसूरी चले जाने पर हमारी भी डोरी उधर ही लगी हुई थी।

अभ्यास प्रश्न: आपने उपर्युक्त यात्रावृत्त का ध्यानपूर्वक पाठ किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए और उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

अभ्यास प्रश्न-1निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइए?

(क) नैनीताल में राहुल सांकृत्यायन हटन कॉटेज में रहे।(सत्य/असत्य)

....

....

(ख) अंग्रेजों के शासनकाल में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी।(सत्य/असत्य)

....

....

(ग) अंग्रेजों ने नैनी झील का पता नेपाल से कुमाऊँ छीनने(1814) के बाद पाया।(सत्य/असत्य)

....

....

अभ्यास प्रश्न-2अंग्रेजों के जाने के बाद नैनीताल की स्थिति में क्या परिवर्तन हुए? दो पक्तियों में उत्तर

दीजिए?

....

....

....

....

अभ्यास प्रश्न-3नैनीताल समुद्र सतह से कितने फुट की ऊँचाई पर स्थित है?

(क) लगभग 7000 फुट

(ख) लगभग 6000 फुट

(ग) लगभग 6500 फुट

(घ) लगभग 8000 फुट

....

....

अभ्यास प्रश्न-4नैनीताल का सर्वोच्च शिखर कौन सा है? एक पंक्ति में उत्तर दीजिए?

....
....

अभ्यास प्रश्न-5 नैनीताल का मुख्य आकर्षण है?

(क) नैना देवी मंदिर
(ख) नैनी झील
(ग) पर्वत
(घ) बाजार

18.4 यात्रावृत्त का सार

राहुल सांकृत्यायन ने लगभग सन् 1956 में अपनी धर्मपत्नी कमला के साथ नैनीताल में निवास किया। आरम्भ में वे वर्णनात्मक शैली में नैनी झील, बस अड्डे, तल्ली ताल, बाजार, डाकखाना, होटल, सिनेमा तथा मल्ली ताल आदि स्थलों का वर्णन करते हैं। 11 मार्च को किराए का बंगला देखने जाते हैं। बंगलों की तलाश करते हुए वे अल्मा कॉटेज, ग्लेनमोर, फर्न कॉटेज, हटन कॉटेज, डलहौसी कॉटेज, स्नाउडन कॉटेज, ओक लॉज आदि देखने जाते हैं। पहले इन बंगलोंमें अंग्रेज निवास करते थे। इन स्थलों का भ्रमण करते हुए वे इन बंगलों के वर्तमान मालिक कुमाउनी शाह लोग, जो व्यवसायी होते हैं, का वर्णन करते हुए कुमाउनी समाज पर भी दृष्टि डालते हैं। 14 मार्च को वे ग्लेनमोर बंगले में निवास करते हैं, वहाँ की अव्यवस्था देखकर वे सिर्फ एक रात गुजारकर दूसरे दिन ओक लॉज में निवास करते हैं।
इस यात्रावृत्त में राहुल जी नैनीताल के इतिहास व भौगोलिकता का भी रोचक वर्णन करते हैं।नैनीताल के इतिहास का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं, अंग्रेजों ने इस अद्भुत ताल का पता नेपाल से कुमाऊँ के छीनने(1814) के बाद पाया। फिर यहाँ बंगले बनने लगे तथा धीरे-धीरे नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गया। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् अंग्रेजों के चले जाने से, जो नैनीताल चहल-पहल से युक्त था, वह अब सुनसान हो गया। उन्होंने अंग्रेजों के जाने से बंगलों व विद्यालयों की बुरी दशा का भी वर्णन किया है। इसमें नैनी झील, लड़ियाकं◌ाठा,

चीना पीक आदि पर्वत श्रेणियों के प्राकृत्रिक सौन्दर्य का सुंदर चित्रण किया। लड़ियाकांठा व चीना पीक पर्वत शिखर की यात्रा का रोचक वर्णन करते हुए लेखक ने यहाँ की वनस्पतियों बुरांश, व फलदार वृक्षों आडू, खुमानी, नाशपाती आदि का भी वर्णन किया है। अतः राहुल जी इस यात्रावृत्त में नैनीताल के प्राकृतिक सौन्दर्य, समाज, रहन-सहन, इतिहास व भौगोलिकता से पाठकों को अवगत कराते हुए उनका मनोरंजन और ज्ञानार्जन भी करते जाते हैं।

18.5 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने यात्रावृत्त का ध्यान से अध्ययन किया है। आइए यहाँ हम महत्त्वपूर्ण अंशो की व्याख्या कर उसके अर्थ को ओर अधिक स्पष्ट करेगें। शेष महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या इकाई का अध्ययन कर आप स्वयं करने का प्रयास कीजिए।

उद्धरण: 1

नैनीताल को अब ग्रीष्म राजधानी कहने में हमारे प्रभुओं को संकोच हो हो रहा था, क्योंकि अंग्रेजों के बहुत से दफ्तरों को लखनऊ से यहाँ भेजना बन्द कर दिया गया था। लेकिन वह अभी आरम्भिक दिन थे, कांग्रेसी नेता आदर्शवाद के लिए शर्म करते भी झुकते थे। अभी उस समय के आने में कुछ देर थी, जब कि फिर मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्रियों को नैनीताल फिर से बसाना था और तब नैनीताल के भाग्य में कुछ परिवर्तन होना भी जरूरी था।

संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृत्त 'नैनीताल में' से लिया गया है।

प्रसंग: अंग्रेजों के शासन में नैनीताल प्रांत की ग्रीष्म राजधानी होने से चहल-पहल से युक्त थी, उनके जाने के पश्चात् नैनीताल की स्थिति में जो परिवर्तन हुए, उसका वर्णन इसमें हुआ है।

व्याख्या: अंग्रेजों के शासनकाल में नैनीताल, प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी थी। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने से अंग्रेज वापस अपने देश को चले गए। अब शासन चला रहे अधिकारियों को नैनीताल को प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बताने में शर्म महसूस हो रही थी। प्रदेश की राजधानी लखनऊ से अंग्रेजों के अनेक दफ्तरों का नैनीताल आना बंद हो गया था। अब नैनीताल जो पूर्व में चहल-पहल से युक्त था, एकदम सुनसान हो गया। लेखक ने कांग्रेसी नेताओं पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि ये भारत की स्वतंत्रता के आरंभिक दिन थे, अतः कांग्रेसी नेता अपने को आदर्शवादी दिखाने का प्रयास करते थे। अब उस समय की प्रतीक्षा थी कि शासन फिर से मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों को नैनीताल में बसाना आरम्भ करे, जिससे नैनीताल पुनः अपने खोए उत्कर्ष को प्राप्त कर सके।

विशेष:1. इसमें लेखक ने नैनीताल के अतीत से पाठकों को अवगत कराया है।

2. उक्त गद्यांश में सरल, सहज व बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआहै, इसमें व्यंग्यात्मक शैली द्वारा कांग्रेसी नेताओं के बनावटी आदर्शवाद पर व्यंग्य किया गया है।

उद्धरण: 2

नैनीताल के निचले भाग से सामने पश्चिम की ओर देखने पर सबसे ऊँचा जो शिखर दिखाई देता है, वही चीना पीक है। यह अंग्रेजो का दिया हुआ नाम है। पहले यह निर्जन-सा स्थान था और केवल पशुपालक यहाँ आया करते थे। सिर्फ साल में एक दिन नैना देवी के मेले के लिए झील के किनारे जंगल में मंगल हो जाता था। अंग्रेजों ने इस अद्भुत ताल का पता नेपाल से कुमाऊँ छीनने (1814) के बाद पाया। फिर यहाँ बंगले बनने लगे तथा धीरे-धीरे नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गया।

संदर्भ: प्रस्तुत गद्यांश राहुल सांकृत्यायन जी के यात्रावृत्त 'नैनीताल में' से उद्धृत है।

प्रसंग: इस यात्रावृत्त में नैनीताल के नैसर्गिक सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। लेखक यात्रा के साथ-साथ यहाँ के भौगोलिकता व इतिहास से भी पाठकों को परिचित कराते हुए चलता है।

व्याख्या: नैनीताल के नीचे के हिस्से से पश्चिम की ओर, जो सबसे ऊँची चोटी दिखाई देती है, उसका नाम चीन पीक है। यह नाम अंग्रेजों ने दिया था। आरम्भ में यह सुनसान और वीरान स्थल था, यहाँ पशुओं को चराने के लिए पशु-चालक आते थे। प्रतिवर्ष झील के किनारे स्थित नैना देवी के मंदिर में मेला लगता था और मेले से इस स्थान में चहल-पहल होती थी। पूर्व में कुमाऊँ व गढ़वाल क्षेत्र में नेपाल के गोरखों का शासन था, अंग्रेजों ने 1814 में गोरखों को पराजित कर यहाँ अपना शासन स्थापित किया। यहीं से अंग्रेजों को इस अद्भुत झील का पता चला। फिर उनके रहने के लिए बंगले बनने लगे तथा कालांतर में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गई।

विशेष: 1. इसमें लेखक ने अंग्रेजों द्वारा नैनी झील का पता लगाने तथा नैनीताल के प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बनने की कथा को बड़ी रोचकता से प्रस्तुत किया है।

2. इस गद्यांश की भाषा सरल, सहज व मुहावरेदार है। 'जंगल में मंगल होना' जैसे मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा की कलात्मकता निखरी है।

अभ्यास प्रश्न-6. निम्नलिखित उद्धरणों की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ? अगर व्याख्या में कठिनाई महसूस हो तो निबंध को पुनः पढ़िए और इस इकाई का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिए ?

उद्धरण: 1

मसूरी ने बीच में आकर फिर हमारे दिमाग में अनिश्चिन्तता पैदा कर दी। नैनीताल के लिए आकर्षण नहीं रह गया। तो भी मकान तो किराए, पर ले चुके थे, इसलिए उसकी सद्गति करनी

जरूरी थी, और वर्षा के बाद ही यहाँ से चल सकते थे। आर्थिक स्थिति का पता अब हमें मालूम होने लगा था, क्योंकि ‘‘अजगर करे ने चाकरी, पंछी करे न काम‘‘ की वृत्ति पर गुजारा नहीं हो सकता था। एक जगह घर बनाकर रहना था, जिसका खर्च निश्चित था, इसलिए आमदनी भी निश्चित होनी चाहिए।

संदर्भः...
....
....
....

प्रसंगः...
....
....
....
....
....

व्याख्याः...
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

विशेष:

....
....
....
....
....
....
....

उद्धरण: 2

मार्च का अन्त जाड़े का समय नहीं था, लेकिन साढ़े 6000 फुट ऊपर बसे नैनीताल (ओक लाज 7000 फुट) में अब भी जाड़ा था। 22 को पानी और ओला पड़ा। आड़ू, खुमानी, नाशपाती के फूल झड़ गये, अब उनमें फल आने की सम्भावना नहीं थी। 23 मार्च को सबेरे उठे, तो देखा सभी ऊँचे स्थान बर्फ से ढँके हैं। हमारे बंगले के आसपास भी बर्फ थी, जो दोपहर तक पिघल गई थी। सर्दी बहुत बढ़ गई थी।

संदर्भ:..
....
....
....

प्रसंग:..
....
....
....
....
....

व्याख्या:..
....

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

विशेष:

....
....
....
....
....
....
....

18.6 स्थानीयता व तथ्यात्मकता

यात्रावृत्त, स्मारक साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है, इसमें लेखक भ्रमण किए गए स्थानों का वर्णन अपनी स्मृतियों के आधार पर करता है। इसमें स्थानीयता,तथ्यात्मकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता, रोचकता एवं भाषा शैली आदि तत्व होते हैं। अब हम यात्रावृत्त 'नैनीताल में' की समीक्षा यात्रावृत्त के इन तत्वों के आधार पर करेंगे।

सर्वप्रथम हम यात्रावृत्त के मूल तत्व स्थानीयता व तथ्यात्मकता को समझने का प्रयास करेंगे। ये वे मूल तत्व हैं, जो यात्रावृत्त को स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करते हैं। स्थानीयता से अभिप्राय उस स्थान विशेष के प्राकृतिक सौन्दर्य, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा जीवन दर्शन आदि के चित्रण से है, जिसका यात्रा-वृतांत प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तुत यात्रावृत्त में राहुल जी ने नैनी झील एवं चीना पीक, लड़ियाकांठा, केमल पीम, आदि पर्वत

शिखरों के प्राकृतिक सौन्दर्य को वर्णित किया है। यहाँ अंग्रेज बंगलों में रहते थे, इन बंगलों में अल्मा कॉटेज, स्नाउडन कॉटेज, ग्लेनमोर, फर्न कॉटेज, हटन कॉटेज, डलहौसी कॉटेज तथा ओक लाज आदि का उल्लेख इसमें हुआ है। अंग्रेजों के समय में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी थी, कालांतर में उसकी स्थिति में जो परिवर्तन हुए उसका वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है, ''दूर-दूर के बंगलों के दिन लौटेंगे, इसकी आशा नहीं थी। नैनीताल में बहुत से यूरोपियन स्कूल थे, जो थोड़े से भारतीय लड़कों को भी ले लिया करते थे। अब उनमें से कितने ही बन्द हो चुके थे और कुछ को दूसरों ने लेकर अपनी संस्था खोली थी। बिड़ला विद्यामंदिर उन्हीं में से एक था।'' इसमें पर्यटन नगरी के होटल व्यवसाय की बुरी स्थिति का भी वर्णन हुआ है।

यात्रावृत्त में तथ्यात्मकता से आशय, उस स्थान विशेष के तथ्यों के चित्रण से है। इस यात्रावृत्त में नैनीताल की विगत घटनाओं का वर्णन हुआ है। पूर्व में कुमाऊँ व गढ़वाल में नेपाल के गोरखों का शासन था। बाद में अंग्रेजों ने गोरखों को पराजित कर सन् 1813 में यह क्षेत्र अपने अधिकार में लिया। यहाँ की जलवायु उनके अनुकूल होने से धीरे-धीरे उन्होंने यहाँ बसना आरम्भ किया। कालांतर में नैनीताल प्रदेश की ग्रीष्म राजधानी बन गई। अतः इसमें लेखक ने नैनीताल की भौगोलिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ यहाँ के अतीत का तथ्यात्मक वर्णन किया है।

अभ्यास प्रश्न-7 यात्रावृत्त से क्या अभिप्राय है और इसकी समीक्षा किन तत्वों के आधार पर की जाती है? चार पंक्ति में उत्तर दीजिए?

....

....

....

....

....

....

अभ्यास प्रश्न-8'नैनीताल में' यात्रावृत्त में स्थानीयता व तथ्यात्मकता से आप क्या समझते हैं? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए?

....

....

....

....

....

अभ्यास प्रश्न-9 निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइए?

(क) स्थानीयता, यात्रावृत्त का वह मूल तत्व है, जो स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं में भी मिलता

है। (सत्य/असत्य)

....
....

(ख) तथ्यात्मकता से आशय स्थान विशेष के तथ्यों के चित्रण से है।(सत्य/असत्य)

....
....

18.7 आत्मीयता व वैयक्तिकता

यायावर स्थान विशेष की यात्रा में उस भू-भाग या दृश्य के प्रति गहन आत्मीयता और लगाव अनुभव करता है, यही आत्मीयता से उसका यात्रा वर्णन उत्कृष्ट बन पाता है। राहुल सांकृत्यायन ने देश और विदेश की अनेक यात्राएँ की, पर उनका मन विदेश की अपेक्षा देश की यात्राओं में अधिक रमा है। देश की यात्राओं में हिमालय उनके आकर्षण का विशेष केन्द्र रहा है ।

इस यात्रावृत्त में पर्वतीय नगरीय नैनीताल के प्रति उनकी गहन आत्मीयता को अनेक स्थलों पर अनुभव किया जा सकता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-‘‘ नैनीताल को अब ग्रीष्म राजधानी कहने में हमारे प्रभुओं को संकोच हो रहा था, क्योंकि अंग्रेजों के बहुत-से दफ्तरों को लखनऊ से यहाँ भेजना बन्द कर दिया था।................ अभी उस समय के आने में कुछ देर थी, जबकि फिर मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्रियों को नैनीताल को फिर से बसाना था, और तब नैनीताल के भाग्य कुछ परिवर्तन होना भी जरूरी था।‘‘

इस यात्रावृत्त में लेखक ने अपने यात्रा स्थल में मिलने व्यक्तियों जैसे विश्वरंजन, हीरालाल शाह, बाँकेलाल कंसल, डॉ0 केसरवानी, डॉ0 मायादास, जगदीश नारायण, शीतल प्रसाद आदि का उल्लेख किया है। उन्होंने यहाँ की वनस्पतियों व फलदार वृक्षों बुरांश, आडू, खुमानी, नाशपाती के साथ-साथ बदलते मौसम बारिश, ओलावृष्टि, हिमपात आदि का भी आत्मीय चित्रण किया है।

यात्रा में लेखक को अपनी अभिरूचि का गहन बोध होता है। उसे प्रवास अवधि में अपनी वैयक्तिक रूचियों और रहन-सहन की आदतों के कारण असुविधाएं भी अनुभव होती हैं। उसकी यही वैयक्तिकता का तत्व स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा यात्रा साहित्य में

अधिक परिलक्षित होता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है- ‘‘मैनें झुँझलाकर कहा-‘‘कमला की औंधी खोपड़ी इसे माने तब ना। जीभ औषध ग्रहण करने में रूकावट डाल रही है।‘‘ अतः इस यात्रावृत्त में वैयक्तिकता अनेक स्थलों पर प्रकट हुई है।

18.8 कल्पनाशीलता व रोचकता

यात्रावृत्त में लेखक भम्रण किए गए स्थलों को कल्पना द्वारा ही स्मृति पटल पर लाता है। वह यात्रा में देखे गए दृश्यों, प्राणियों, और प्रकृति के विविध रूपों को अपनी कल्पनाशीलता द्वारा पुनः सृजित करता है। उसकी यह कल्पना यथार्थ पर आश्रित होती है।

नैनीताल की नैनी झील तथा अन्य पर्यटन स्थलों की प्राकृतिक सुषमा का लेखक ने कल्पनाशीलता द्वारा सजीव चित्रण किया है और पाठकों को यह अनुभव होता है, मानो वे स्वयं भी यात्रा कर रहे हों। एक उदाहरण दृष्टव्य है, ‘‘नैनीताल का श्रृंगार वहाँ का ताल है, जो किसी भी पर्वतीय विलासपुरी में नहीं है।‘‘ अतःलेखक की कल्पनाशीलता इस यात्रावृत्त में स्पष्ट अनुभव की जा सकती है।

रोचकता, यात्रावृत्त का आवश्यक तत्व है, इसके अभाव में यात्रा-वर्णन नीरस इतिहास के समान हो जाता है। इस यात्रावृत्त में लेखक ने अपने यात्रा अनुभव, रोमांचक घटनाओं आदि को रोचकता से वर्णित किया है। उसने नैनीताल के सर्वोच्च्च शिखर चीना पीक तथा लड़ियाकांठा की यात्रा का रोचक वर्णन किया है। लेखक का विनोदी स्वभाव भी इस यात्रा में प्रकट हुआ है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-‘‘ हम छः आदमी थे। रास्ते भर चुहुल और विनोद होता गया। यहाँ बैठकर वनभोज हुआ। सामने नीचे की ओर ताल में नावों को दौड़ते और आगे मैदानी भूमि देखते रहे, ...अब सूर्य भी डूब गया और हमारे साथियों ने पगडण्डी पकड़ ली, जिसमें कितनी जगह सीधी खड़ी उतराई थी। ऐसी जगह यदि पैर काँपने लगे, तो दोष क्या? जब सड़क पर पहुँचे, तो जान में जान आई।‘‘

अभ्यास प्रश्न-10 आत्मीयता व वैयक्तिकता से क्या तात्पर्य है? चार पंक्ति में उत्तर दीजिए?

....
....
....
....
....
....

अभ्यास प्रश्न-11 कल्पनाशीलता व रोचकता से आप क्या समझते हैं? चार पंक्ति में उत्तर दीजिए?

....
....

....
....
....
....

अभ्यास प्रश्न-12 निम्न कथन सत्य हैं या असत्य बताइये?

(क) राहुल सांकृत्यायन जी का मन देश की यात्राओं की अपेक्षा विदेशों में अधिक रमा है। (सत्य/असत्य)

....
....

(ख)वैयक्तिकता स्मारक साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा यात्रावृत्त में अधिक प्रकट होती है। (सत्य/असत्य)

....
....

(ग)रोचकता के अभाव में यात्रावृत्त नीरस इतिहास बन जाते हैं। (सत्य/असत्य)

....
....

18.9 संरचना शिल्प

राहुल सांकृत्यायन ने अपने यात्रावृत्तों के द्वारा आधुनिक युग के यात्रावृत्त की आधारशिला रखी है। वे जन्मजात घुमक्कड़ थे। उन्होंने यात्रा संबंधी प्रचुर रचनाएं हिन्दी साहित्य को दी है। संरचना शिल्प के अंतर्गत भाषा और शैली आदि तत्व आते हैं, आइए हम इस यात्रावृत्त की भाषा और शैली संबंधी विशेषताओं पर विचार करें

18.9.1 भाषा:

राहुल जी ने संस्कृतनिष्ठ पाण्डित्यपूर्ण हिन्दी की अपेक्षा सरल, सुबोध औरव्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने भाषा को किलष्ट न बनाते हुए सरल और सुबोध बनाए रखने के लिए ही विषयानुकूल शब्दावली प्रयुक्त की है। इस यात्रावृत्त में मुख्यतः तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग हुआ है। इसमें तत्सम शब्दों में श्रृंगार, ज्येष्ठ, जीर्ण, अवस्थित, दुर्गति, परिणत, दुरारोह आदि शब्द प्रयोग हुए हैं। अरबी-फारसी शब्दों में

इमारत, अफसोस, आमदनी, दफ्तर, बाजार, आराम, सफाई, किराया, मरम्मत आदि बोलचाल के शब्दों को भी मुक्त मन से प्रयुक्त किया है। अंग्रेजी शब्दावली में म्युनिसिपल लाइब्रेरी, काटेज, यूरोपियन, टेम्परेचर, पिकनिक आदि शब्दों को बिना किसी संकोच के अपनाया गया है।

उन्होंने वाक्य रचना में छोटे-छोटे सरल वाक्यों का प्रयोग इस यात्रावृत्त के अधिकांश स्थलों में किया है। एक उदाहरण- '' हमने उसके ही गुण ही देखे, उसी पर मुग्ध होकर कह दिया, दो कमरे कल तैयार कर दिये जाएँ।''

राहुल जी ने भाषा की चुस्ती और रोचकता को बनाए रखने के लिए आवश्यकतानुसार कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जैसे- 'साढ़े साती सनीचर का कोप', अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम', 'जंगल में मंगल', 'जान में जाना आना' आदि। इन कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा की अर्थवत्ता बढ़ी है और भावों की अभिव्यक्ति सहज हुई है।

18.9.2 शैली:

यह एक यात्रावृत्त है, यात्रावृत्त मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली में ही लिखे जाते हैं। इस यात्रावृत्त में अधिकांश स्थलों में वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। लेखक ने वर्णनात्मक शैली में नैनीताल का वर्णन करते हुआ लिखा है। ''बस का अड्डा तल्ली (निचले) ताल में है। यहाँ भी बाजार है और बड़ा डाकखाना भी यहीं है। कुलियों पर सामान उठवाकर ताल को बाईं छोड़ते हम सड़क के आगे बढ़े। थोड़ी ही दूर आगे पहाड़ की ओर दूकानें और होटल शुरू हो गए। यहीं सिनेमा भी है। ताल के परले छोर को मल्ली(उपरला) ताल कहते हैं।''

लेखक यात्रा स्थल के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मोहित होकर उसका मनमोहक चित्र अंकित करने के लिए चित्रात्मक शैली का प्रयोग करता है। राहुल जी ने नैनीताल में हिमपात का सुंदर चित्रण करते हुए लिखा है-'' सर्द स्थानों में टेम्परेचर गिरने के साथ बरसता पानी बजरी के रूप में परिणत होता है, और कुछ सर्दी ओर बढ़ने पर वह हिम बन जाता है। अधिक सर्दी होने पर कणों के रूप में नहीं, बल्कि रूई के बड़े-बड़े फाहों के रूप में हिम हवा में तैरते हुए गिरने लगता है।''

आधुनिक यात्रावृत्तों में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग यात्रा-वृत्त के बीच-बीच में किया जाता है। इस यात्रा-वृत्त में लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली द्वारा कांग्रेसी नेताओं के दिखावटी आदर्शवाद पर व्यंग्य करते हुए लिखा है-'' लेकिन, वह अभी आरम्भिक दिन थे, कांग्रेसी नेता आदर्शवाद के लिए शर्म करते भी झुकते थे। इसके अतिरिक्त इतिवृत्तात्मक व भावात्मक शैली का भी प्रयोग इसमें हुआ है। अतः इस यात्रावृत्त में लेखक द्वारा सभी शैलियों का समन्वित प्रयोग हुआ है।

18.10 प्रतिपाद्य:

प्रस्तुत यात्रावृत्त में लेखक ने पर्वतीय नगरी नैनीताल की भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक महत्त्व का विवरण दिया है, वहीं दूसरी ओर यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य, जन-जीवन, रहन-सहन आदि के मनमोहक चित्र दिए हैं। वह अपनी यात्रा के मध्य समय-समय पर मिलने व्यक्तियों का उल्लेख करना भी नहीं भूला है। इस यात्रावृत्त में वह अदृश्य भाव से सर्वत्र उपस्थित रहकर उसने यहाँ का आत्मीय वर्णन किया है। इस यात्रावृत्त में इतिवृत्तात्मकता की अधिकता है। इस यात्रावृत्त का महत्त्व इसमें है कि वह पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ नैनीताल के भौगोलिक और ऐतिहासिक तथ्यों से पाठकों को अवगत कराता है। अतः यात्रावृत्त मनोरंजन व ज्ञानवर्द्धन करने के साथ-साथ नवयुवकों को यात्रा के लिए प्रेरित कर उनमें उत्साह, साहस आदि भावों को भी जाग्रत करते हैं।

18.11 सारांश:

इस यात्रावृत्त लेखक नैनीताल की भौगोलिक स्थिति, प्रमुख स्थलों की जानकारी देते हुए पाठकों को यहाँ के ऐतिहासिक तथ्यों से भी अवगत कराता चलता है। इसमें नैनीतालके प्राकृतिक सौन्दर्य, जन-जीवन तथा रहन-सहन आदि का चित्रण हुआ है। यात्रावृत्त की समीक्षा स्थानीयता, तथ्यात्मकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता व रोचकता आदि तत्वों के आधार पर की जाती है। आप इस इकाई का अध्ययन कर इन तत्वों के आधार पर ‘नैनीताल में‘ यात्रावृत्त की समीक्षा कर सकते हैं।यात्रावृत्त की भाषा सरल, सुबोध तथा व्यावहारिक है। इसमें तत्सम, तद्भव, अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी के बोलचाल के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा की चुस्ती और रोचकता के लिए कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है।प्रस्तुत यात्रावृत्त की शैली मुख्यतः वर्णनात्मक और विवरणात्मक है, इसके साथ-साथ चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक, इतिवृत्तात्मक तथा भावात्मक आदि शैलियों का समन्वित व सफल प्रयोग हुआ है। यात्रावृत्त का मुख्य प्रतिपाद्य मनोरंजन के साथ ज्ञानार्जन होता है। इसका विवेचन आप इस इकाई को पढ़कर स्वयं कर सकते हैं।

18.12 पारिभाषिक शब्दावली

ज्येष्ठ- बड़ा, पद, मर्यादा, वय आदि में किसी से बढ़ा या बढ़कर।

अवस्थित- उपस्थित, मौजूद।

अफसोस- शोक, दुख, पश्चाताप, खेद।

वृत्ति- जीविका, रोजी, पेशा, व्यापार कार्य, स्वभाव।

दुर्गति-	बुरी गति, दुर्दशा।
परिणत-	एक रूप से दूसरे में आया हुआ, रूपान्तरित।
निरगंध-	बिना किसी गंध का।
अतिरक्त-	अत्यधिक लाल।
निर्जन-	जहाँ कोई न हो, सुनसान, एकांत।
दुर्भाग्य-	बुरा भाग्य, खोटी किस्मत।
पगडण्डी-	जंगलों या खेतों में का वह पतला रास्ता जो लोगों के आने-जाने से बनता है।
सुषमा-	बहुत अधिक शोभा, सुन्दरता।
आकर्षक-	जिसमें आकर्षण हो, खींचनेवाला, सुन्दर।
यायावर-	वह जो एक जगह टिककर न रहता हो, खानाबदोश
आत्मीय-	निज का, अपना।

18.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

2-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'यात्रावृत्त का पाठ' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

3- (ग)

4- विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'यात्रावृत्त का पाठ' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

5- (ख)

6-विद्यार्थी उद्धरण 1 एवं 2 की व्याख्या के लिए शीर्षक 'संदर्भ सहित व्याख्या' को ध्यान से पढ़ेगे।

7-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'स्थानीयता व तथ्यात्मकता' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

8-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'स्थानीयता व तथ्यात्मकता' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

9-(क) असत्य

(ख) सत्य

10-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'आत्मीयता व वैयक्तिकता' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

11-विद्यार्थी इस प्रश्न का उत्तर 'कल्पनाशीलता व रोचकता ' शीर्षक से पढ़कर लिखेंगे।

12. (क)असत्य

(ख) सत्य

(ग) सत्य

18.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राहुल सांकृत्यायन- 'नैनीताल में' 'पहाड़ पत्रिका' परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल,अंक 7
2. रेखा ढैला, निर्मला ढैला -'स्मारक साहित्य एवं उसकी विधाएँ', ग्रन्थायन प्रकाशन अलीगढ़, संस्करण 1999।
3. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव -'राहुल सांकृत्यायनः एक इतिहासपरक अनुशीलन, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010।
4. डॉ0 कृष्ण देव झारी -'साहित्य सिद्धान्त और साहित्य विधाएं', शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008।

18.15 उपयोगी पुस्तकें

1. राहुल सांकृत्यायन - 'नैनीताल में' 'पहाड पत्रिका़', परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल, अंक 7
2. रेखा ढैला, निर्मला ढैला -'स्मारक साहित्य एवं उसकी विधाएँ', ग्रन्थायन प्रकाशन अलीगढ़ संस्करण 1999।
3. केशवदत्त रूवाली, जगत सिंह बिष्ट - 'हिन्दी स्मारक साहित्य', ग्रन्थायन प्रकाशन अलीगढ़।
4. उर्मिलेश - 'राहुल सांकृत्यायनः सृजन और संघर्ष, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
5. डॉ0 नगेन्द्र - 'हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पैपरबैक्स, नोएड़ा, संस्करण 2009।

18.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. यात्रावृत्त के तत्वों के आधार पर 'नैनीताल में' यात्रावृत्त की समीक्षा कीजिए?
2. 'नैनीताल में' यात्रावृत्त की भाषा और शैली संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?